7. 'मृजेर्विभाषा' सूत्र को सोदाहरण स्पष्ट करें।

8. 'अचो यत्' सूत्र को उदाहरण के साथ घटावें।

9. 'जेयम्' प्रयोग सिद्ध करें।

10.हार्यम् प्रयोग को सहायक सूत्रों के साथ सिद्ध करें।

खण्ड – 2
इकाई – 4
महाभाष्यम् (पस्पशाह्निकम्)

इकाई की रुपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 महाभाष्यम्–पस्पशाह्निकम्–व्याख्या

4.4 पस्पशाह्निक – महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

4.5 सारांश

4.6 उपयोगी पुस्तकें

4.7 स्वपरख पश्न/अभ्यास

4.1 उद्देश्य

1. महाभाष्य का सामान्य परिचय प्रदान करना ।

2. पस्पशाह्निक का शाब्दिक अर्थ ज्ञात करना ।

3. मूलसंस्कृतभाष्य की व्याख्यापूर्वक पस्पशाह्निक में आए मुख्य प्रकरणों यथा शब्द का स्वरुप, व्याकरण के प्रयोजन और महत्त्व इत्यादि विषयों पर प्रकाश डालना।

4.2 प्रस्तावना

महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य लिखकर वस्तुतः प्रथम वैयाकरण पाणिनि की महान धरोहर को सफलता के साथ आगे बढ़ाने का दुष्कर कार्य किया है। पतञ्जलि वस्तुतः बहुत मेधावी वैयाकरण थे।

पतञ्जलि कृत महाभाष्य में कुल चौरासी आह्निक हैं, उनमें प्रथम अध्याय के नव आह्निकों में प्रथम आह्निक प्रस्तावना के रुप में हैं। कोशकारों ने 'पस्पश' आ अर्थ प्रस्तावना, भूमिका, आमुख आदि किया है।

'अह्ना निवृत्तम् आह्निकम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार एक दिन में जितना विषय पढ़ाया अथवा पढ़ा जा सकता है, उस विषय–विभाग का नाम आह्निक है। उक्त इकाई में महाभाष्य के प्रथम आह्निक 'पस्पशाह्निक' को विस्तार से प्रस्तुत किया जा रहा है।

4.3 पस्पशाह्निकम्

'अथ शब्दानुशासनम्'

अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते। शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्।

'अब शब्दों का अनुशासन (होगा)। 'अथ' यह शब्द अधिकार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यहां से शब्दानुशासन या व्याकरण शास्त्र का आरम्भ हुआ समझना चाहिए।

'केषां शब्दानाम्? लौकिकानां वैदिकानां च। तत्र लौकिकास्तावत्– गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती, शकुनिः, मृगः, ब्राह्मण इति। वैदिकाः खल्वपि – शन्नो देवीरभिष्टये। इषे त्वोर्जे त्वा। अग्निमीळे पुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतय इति ।।

किन शब्दों का (अनुशासन) ? लौकिक और वैदिक (शब्दों) का। उनमें लौकिक (शब्द) तो है– गौः (=गाय), अश्वः (=घोडा), पुरुषः (=आदमी), हस्ती (=हाथी), शकुनिः (=पक्षी), मृगः (=हरिण), ब्राह्मणः (=ब्राह्मण), इत्यादि। और वैदिक (शब्द) भी – 'शन्नो देवीरभिष्टये', 'इषे त्वोर्जे त्वा', 'अग्निमीळे पुरोहितम्', 'अग्न आ याहि वीतये' ।

तात्पर्य ह है कि 'अथ' शब्द विषय–क्षेत्र का सूचक है। विषय–प्रवेश अर्थात् नए प्रसङ्ग को आरम्भ करने के लिए इसका प्रयोग होता है। जैसे योगदर्शन में 'अथ योगानुशासनम्', वेदान्तदर्शन में 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'। शब्द से यहां अभिप्राय है वाणी, भाषा, अनुशासन का अर्थ है नियमों का उपदेश, शिक्षण। भाषा के नियमों का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र शब्दानुशासन कहलाता है। इसे

व्याकरण भी कहते है। पाणिनि के व्याकरण, 'अष्टाध्यायी', में जिसकी व्याख्या पतञ्जलि अपने इस ग्रन्थ 'महाभाष्य' में करने चले हैं, लौकिक संस्कृत तथा वैदिक संस्कृत, दानों ही, प्रतिपाद्य विषय है। अत एव लौकिक भाषा में शब्दों के उदाहरण देने के पश्चात्, पतञ्जलि ने वैदिक भाषा के उदाहरण के रुप में क्रमशः अथर्ववेद, यजुर्वेद, ऋग्वेद और सामवेद के प्रथम मन्त्रों के प्रतीक उद्धृत किए है ।

शब्द परिभाषा – अथ गौरित्यत्र कः शब्दः? किं यत् तत् सास्ना–लाङ्गूल–ककुद–खुर–विषाण्यर्थरुपं स शब्दः ? नेत्याह। द्रव्य नाम तत्।। यत्तर्हि तदिङ्गितं चेष्टितं निमिषितमिति, स शब्दः ? नेत्याह। क्रिया नाम सा ।। यत्तर्हि तच्छुक्लो नीलः कपिलः कपोत इति, स शब्दः ? नेत्याह । गुणो नाम सः।। यत्तर्हि तद्भिन्नेष्वभिन्नं छिन्नेष्वच्छिन्नं सामान्यभूतं, स शब्दः ? नेत्याह । आकृतिर्नाम सा।।

शब्द की परिभाषा देते हुए पतञ्जलि कहते हैं – अब 'गौः' इस में शब्द कौन सा है? गलकम्बल, पूँछ, कुहान, खुरों और सींगों वाला जो पदार्थ है, क्या वह शब्द है? आचार्य कहते है, नहीं। वह तो द्रव्य (=वस्तु) है। पुनः पश्न है कि, क्या जो इंगित (=मुख–भंगिमा), चेष्टा या आंखों की झपक है, वह शब्द है? तब आचार्य कहते हैं, नहीं । वह तो क्रिया है। तो क्या जो सफेद, नीला, भूरा, चितकबरा रंग है, वह शब्द है? आचार्य कहते है, नहीं। वह तो गुण है। फिर प्रश्न किया जाता है कि क्या जो पृथक–पृथक पदार्थों में एकरुप है, जो उन पदार्थों के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं होता, जो सबमें समान रुप है, वह शब्द है? तब आचार्य कहते हैं, नहीं। वह तो जाति है।

कस्तर्हि शब्दः? येनाच्चारितेन सास्ना–लाङ्गूल–ककुद–खुर– विषाणिनां संप्रत्ययो भवति, स शब्दः । अथवा– प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते। तद्यथा–शब्दं कुरु, मा शब्दं कार्षीः, शब्दकार्ययं माणवकः, इति ध्वनि कुर्वन्नेवमुच्यते। तस्माद् ध्वनिः शब्दः ।।

तो शब्द क्या है? उत्तर देते हैं–जिसके उच्चारण किए जाने से गलकम्बल, पूँछ, कुहान, खुरों और सींगों वाले (गो–द्रव्यों) का सम्बोध होता है, वह शब्द है। अथवा, लोक व्यवहार में पदार्थों का ज्ञान कराने वाली ध्वनि ही शब्द कहलाती है। जैसा कि ध्वनि करने वाले को ऐसा कहा जाता है– 'शब्द करो', 'शब्द मत करो', 'यह बालक शब्दकारी (=बोलने वाला) है'। इसलिए ध्वनि (भी) शब्द है।

शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि कानि पुनः शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि ? रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम् । रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। लोपागमवर्ण–विकारज्ञो हि सम्यग् वेदान् परिपालयिष्यतीति।

शब्दानुशासन (व्याकरण) के क्या प्रयोजन हैं? उत्तर देते हैं –1. रक्षा, 2. ऊह, 3. आगम, 4. लाघव और 5. सन्देह निवृत्ति, ये प्रयोजन है। पहला प्रयोजन

बताते है कि वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण पढ़ना चाहिए, क्योंकि वर्णों के लोप (हटाने), आगम (आने, बढ जाने) तथा विकार (परिवर्तन, आदेश) को जानने वाला व्यक्ति ही वेदों की रक्षा उत्तम रीति से कर पाएगा ।

ऊहः खल्वपि – न सर्वैलिङ्गेर्न च सर्वाभिर्विभक्तिभिर्वेदे मन्त्रा निगदिताः। ते चावश्यं यज्ञगतेन पुरुषेण यथायथं विपरिणमयितव्याः। तान्नावैयाकरणः शक्नोति यथायथं विपरिणमयितुम्। तस्मादध्येयं व्याकरणम् । आगमः खल्वपि – 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इति। प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्। प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति।

दूसरा प्रयोजन बताते हैं कि ऊह (तर्कणा) भी (प्रयोजन है)। वेद में यन्त्रों को सब लिंगों और सब विभक्तियों में नहीं पढ़ा गया। यज्ञ में संलग्न मनुष्य को उन्हें जैसा चाहिए वैसा बदलना पड़ता है। व्याकरण न जानने वाला व्यक्ति उन्हें यथोचित रुप से बदल नहीं सकता। इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।

तीसरा प्रयोजन शास्त्र–विधान भी है– 'ब्राह्मण को निष्काम कर्तव्य से रुप में छः अंगों सहित वेद को पढ़ना और समझना चाहिए'। छः अंगों में व्याकरण मुख्य हैं और मुख्य (विषय) में किया हुआ प्रयत्न (अधिक) फल देता है।

''लघ्वर्थ चाध्येयं व्याकरणम्। ब्राह्मणेनावश्यं शब्दा ज्ञेयाः' इति। न चान्तरेण व्याकरणं लघुनोपायेन शब्दाः शक्या ज्ञातुम्। ''असंदेहार्थं चाध्येयं व्याकरणम्। याज्ञिकाः पठन्ति– 'स्थूलपृषती– माग्निवारुणीम– नड्वाहीमालभेते'ति। तस्यां सन्देहः – स्थूला चासौ पृषती च स्थूलपृषती, स्थूलानि वा पृषन्ति यस्याः सेयं स्थूलपृषतीति। तां नावैयाकरणः स्वरतोऽध्यवस्यति। यदि पूर्वपद– प्रकृतिस्वरत्वं ततो बहुब्रीहिः, अथ समासान्तोदात्तत्वं ततस्तत्पुरुष इति।।

चतुर्थ प्रयोजन बताते हैं कि लाघव (संक्षेप) के उद्देश्य से भी व्याकरण पढ़ना चाहिए। ब्राह्मण को शब्दों का ज्ञान अवश्य करना है, और व्याकरण के सिवाए अन्य किसी छोटे (संक्षिप्त) साधन से शब्द नहीं जाने जा सकते ।

पाँचवा प्रयोजन है कि सन्देह के निवारण के लिए भी व्याकरण पढ़ना चहिए। याज्ञिक (कर्मकाण्डी) पढ़ते (कहते) हैं– 'स्थूलपृषती' गाय को अग्नि और वरुण के उद्देश्य से आलम्बन करे'। यहां पर ('स्थूलपृषती' पद के अर्थ में) सन्देह होता है – (शरीर पर) धब्बों वाली, मोटी गाय भी स्थूलपृषती है, अथवा (शरीर पर) मोटे धब्बों वाली गाय भी स्थूलपृषती है। व्याकरण न जानने वाला व्यक्ति स्वर की सहायता से (यहां पर अर्थ का) निश्चय नहीं कर पाता। यदि (स्थूलपृषती शब्द के) पूर्वपद (अर्थात् स्थूल) में अपना मूल स्वर है, तो यह बहुब्रीहि है। और यदि समास का अन्तिम स्वर उदात्त है, तो यह तत्पुरुष है।

कर्मधारय तत्पुरुष समास होने पर विग्रह होगा। 'स्थूला चाऽसौ पृषती च', अर्थात् 'धब्बों वाली और मोटी' गाय। बहुब्रीहि समास में विग्रह होगा 'स्थूलानि पृषन्ति यस्याः', अर्थात् 'मोटे धब्बों वाली' गाय।

शब्दानुशासनस्य प्रयोजनान्तराणि– इमानि च भूयः शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि– तेऽसुराः। दुष्टः शब्दः। यदधीतम्। यस्तु प्रयुङ्क्ते। अविद्वांसः। विभक्तिं कुर्वन्ति। यो वा इमाम्। चत्वारि। उत त्वः। सक्तुमिव। सारस्वतीम्। दशम्या पुत्रस्य। सुदेवो असि वरुण, इति। तेऽसुराः: – 'तेऽरुराः हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः परबभूवुः। तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै। म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः'। म्लेच्छा मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्। तेऽसुराः।। दुष्टः शब्दः – ''दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्'' इति। दुष्टान् मा प्रयुक्ष्महीत्यध्येयं व्याकरणम्। दुष्टः शब्दः।।

व्याकरण के ये और भी प्रयोजन हैं – 1. तेऽसुराः। 2. दुष्टः शब्दः। 3. यदधीतम्। 4. यस्तु प्रयुङ्क्ते। 5. अविद्वांसः 6. विभक्ति कुर्वन्ति। 7. यो वा इमाम्। 8. चत्वारि। 9. उत त्वः। 10. सक्तुमिव। 11. सारस्वतीम्। 12. दशम्यां पुत्रस्य। 13. सुदेवो असि वरुण। क्रमशः स्पष्ट करते हैं –

1. तेऽसुराः। वे असुर ('हेऽरयः, हेऽरयः' के स्थान पर) 'हेऽलयः, हेऽलयः' कहते हुए पराजित हुए। इसलिए ब्राह्मण को म्लेच्छन नहीं करना चाहिए, अर्थात् अपभाषण नहीं करना चाहिए। यह जो अपशब्द है, यह म्लेच्छ है। हम म्लेच्छ (=अशुद्धभाषी) न बनें, इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।।

2. दुष्टः शब्दः। स्वर और वर्ण से अशुद्ध उच्चारण किए जाने पर दोषयुक्त शब्द उस (अपने वास्तविक) अर्थ को नहीं कह पाता। वह वाणीरुप वज्र अपने प्रयोक्ता यजमान को ही नष्ट कर देता है। जैसे स्वर के दोष के कारण 'इन्द्रशत्रु' शब्द ने किया। हम दोषयुक्त शब्द प्रयोग में न लाएं, अतः व्याकरण पढ़ना चाहिए। 'इन्द्रशत्रु' उदाहरण को स्पष्ट करते हैं कि–

'इन्द्रशत्रु' शब्द में तत्पुरुष और बहुब्रीहि दोनों प्रकार से समास हो सकता है। 1. 'इन्द्रस्य शत्रुः शातयिता' अर्थात् 'इन्द्र का नाश करने वाला' इस प्रकार षष्ठीतत्पुरुष समास में अन्तोदात्त स्वर होना चाहिए। 2. 'इन्द्रशत्रुः शातयिता यस्य सः' अर्थात् 'इन्द्र के द्वारा नष्ट किए जाने वाला', यहां बहुब्रीहि समास में आद्युदात्त स्वर होगा। तैत्तिरीय संहिता में आख्यान इस प्रकार है। वृत्र ने इन्द्र को नष्ट करने के लिए 'इन्द्रशत्रुः वर्धस्व' से अभिचार करना चाहा। इस अभिप्राय से उसे तत्पुरुष समास के अनुसार अन्तोदात्त स्वर का प्रयोग करना चाहिए था। परन्तु प्रमाद से आद्युदात्त स्वर का उच्चारण हो गया, जिससे बहुब्रीहि समास के अनुसार अर्थ हुआ – 'हे अग्नि, तू ऐसा बन जिसका नाश करने

वाला इन्द्र हो।' अभिप्रेत अर्थ के विपरीत अर्थ वाला वाक्य बन जाने से अपने उद्देश्य की सिद्धि न होकर उनके विपरीत परिणाम निकला।

यद्धीतम् – 'यद्धीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते। अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्'।। तस्मादनर्थकं माधिगीष्महीत्यध्येयं व्याकरणम्। यद्धीतम्।। यस्तु प्रयुङ्क्ते। यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले। सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः।। कः? वाग्योगविदेव। कुत एतत् ? यो हि शब्दान् जानात्यपशब्दा- नप्यसौ। यथैव हि शब्दज्ञाने धर्मः, एवमपशब्दज्ञानेऽप्यधर्मः। अथवा भूयानधर्मः प्राप्नोति। कुत एतत ? भूयांसोऽपशब्दा अल्पीयांसः शब्दा इति। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा- गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिकेत्यादयो बहवोऽपभ्रंशाः। अथ योऽवाग्योगविद्, अज्ञानं तस्य शरणम्।

व्याकरण के अन्य प्रयोजनों में से तीसरे का उदाहरण देते हुए कहा है, यदधीतम्। 'जिसे पढ़ा है, पर समझा नहीं, केवल पाठमात्रसे उच्चारण कर दिया है, वह (शब्द) कभी (ज्ञान का) प्रकाश नहीं करता।' हम निरर्थक पाठमात्र न करते रहें, अतः व्याकरण पढ़ना चाहिए।

चौथा प्रयोजन कहते है यस्तु प्रयुङ्क्ते। ''अर्थात् (शब्दों के) प्रयोग-विशेष में कुशल जो व्यक्ति व्यवहार के समय शब्दों का यथायोग्य प्रयोग करता है, वाणी के प्रयोग को जानने वाला वह व्यक्ति परलोक में अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त करता है, और अपशब्दों के कारण दूषित होता है। प्रश्न है कौन ? वाणी के प्रयोग करने वाला ही। यह कैसे? स्पष्ट करते हैं कि- जो (शुद्ध) शब्दों को जानता है, वह अपशब्दों (= अशुद्ध शब्दों) को भी जानता है। जैसे- (शुद्ध) शब्दों के जानने में धर्म (=अच्छाई) है, वैसे ही अशुद्ध शब्दों के जानने में अधर्म (= बुराई) भी है। प्रत्युत अधर्म अधिक होता है क्योंकि अपशब्द अधिक है, शब्द थोड़े हैं। एक एक शब्द के अपभ्रंष (= विकृत रुप) बहुत है। सो जैसे- गौ इस शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्यादि अनेक अपभ्रंश है।

फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि, जो वाणी के प्रयोग को नहीं जानता, वह? तब उत्तर देते हैं कि उसका अज्ञान उसका बचाव है।

विषम उपन्यासः। नात्यन्तायाऽज्ञानं शरणं भवितुमर्हति। योह्यजानन् वै ब्राह्मणं हन्यात् सुरां वा पिबेत् सोऽपि मन्येपतितः स्यात् ।। एवं तर्हि – सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः। कः ? अवाग्यो-गविदेव। अथ यो वाग्योगविद्, विज्ञानं तस्य शरणम्। क्व पुररिदं पठितम्? भ्राजा नाम श्लोकाः। किं च भोः श्लोका अपि प्रमाणम् ? किं चातः? यदि श्लोका अपि प्रमाणम्। अयमपि श्लोकः प्रमाणं भवितुमर्हति। 'यदुदुम्बरवर्णानां घटीनां मण्डल महत्। पीतं न गमयेत्स्वर्ग किं तत् ऋतुगतं नयेत्'।। प्रमत्तगीत एष तत्रभवतः। यस्त्वप्रमत्तगीतस्तत्प्रमाणम्। यस्तु प्रयुङ्क्ते।।

यह कथन ठीक नहीं। अज्ञान बिल्कुल बचाव नहीं कर सकता। जो अज्ञानवश ब्राह्मण को मार दे, या शराब पी ले, मैं समझता हूं कि वह भी पतित होगा। तो ऐसे सही- वाणी के प्रयोग को जानने वाला वह व्यक्ति अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त होता है, और (दूसरा) अपशब्दों के कारण दूषित होता है। कौन ? वाणी के प्रयोग को न जानने वाला ही। प्रश्न होता है कि, जो वाणी के प्रयोग को जानता है, वह ? तो उत्तर देते हैं कि, ज्ञान ही उसका संरक्षण है।

पर यह कहाँ कहा गया है ? तो उत्तर है कि, भाज्र नामक श्लोक हैं (उनमें)। तो शंका करते हैं कि, श्लोक भी प्रमाण होते हैं ? इससे क्या हुआ ? कहते हैं कि, यदि श्लोक भी प्रमाण है, तो यह श्लोक भी प्रमाण होना चाहिए- 'तांबे के रंग वाली (गहरे लाल रंग की) मटकियों का बड़ा समूह यदि पीए जाने पर स्वर्ग नहीं पहुंचा सकता, तो क्या (सौत्रामणि) यज्ञ में वह (थोड़ा सा सोमपान) स्वर्ग-प्राप्ति करा सकता है ? शंका का निवारण करते हैं कि, आपका यह वचन तो प्रमादपूर्ण है। प्रमादरहित जो वचन है, प्रमाण वही है।।

अविद्वांसः - 'अविद्वांसः प्रत्यभिवादे नाम्नो ये न प्लुतिं विदुः। कामं तेषु तु विप्रोष्य स्त्रीष्विवायमहं वदेत्'।। अभिवादे स्त्रीवन्माभूमेत्यध्येयं व्याकरणम्। अविद्वांसः।। विभक्तिं कुर्वन्ति- याज्ञिकाः पठन्ति-'प्रयाजाः सविभक्तिकाः कार्या' इति। न चान्तरेण व्याकरणं प्रयाजाः सविभक्तिकाः शक्याः कर्त्तुम्। विभक्तिं कुर्वन्ति।। यो वा इमाम् 'यो वा इमां पदशः स्वरशोऽक्षरशश्च वाचं विदधाति स आर्त्विजीनो भवति'। आर्त्विजीनाः स्यामेत्यध्येयं व्याकरणम्। यो वा इमाम्।।

अब व्याकरणाध्ययन के पाँचवें अन्य प्रयोजन को कहते हैं- अविद्वांसः। 'जो अशिक्षित लोग प्रत्यभिवादन (= अभिवादन के उत्तर) में (अभिवादक के) नाम को प्लुत करना नहीं जानते, बाहर से आने पर ऐसे लोगों को भले ही 'अयम् अहम्' कह कर अभिवादन करे, जैसे स्त्रियों के लिए (किया जाता है)'। अभिवादन के विषय में हम स्त्रीवत् न बनें रहें, अतः व्याकरण पढ़ना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि, शिक्षित व्यक्ति के प्रतिदेवदत्त का अभिवादन-वाक्य होगा- 'अभिवादये देवदत्तोऽहं भोः!' उसके उत्तर में शिक्षित व्यक्ति देवदत्त के नाम को प्लुत करके बोलेगा - 'आयुष्मान् भव भो देवदत्त ३!' परन्तु जो प्लुत का उच्चारण नहीं कर सकता उस व्यक्ति के प्रति देवदत्त अपना नाम लिये बिना ही अभिवादन करेगा - 'अभिवादये अयम् अहं भोः !' ।।

छठे प्रयोजन का उदाहरण देते हैं- ''विभक्तिं कुर्वन्ति।'' अर्थात् कर्मकाण्डी कहते हैं - 'प्रयाज-मन्त्रों का विभक्ति-सहित उच्चारण करना चाहिए' । व्याकरण के बिना प्रयाज-मन्त्रों का विभक्ति-सहित उच्चारण नहीं किया जा सकता।।

सातवाँ प्रयोजन बताते हैं– ''यो वा इमाम्।'' अर्थात् पद, स्वर, और अक्षर की दृष्टि से जो इस वाणी का ठीक उच्चारण करता है, वह आर्त्विजीन (= यज्ञ का अधिकारी) होता है। हम आर्त्विजीन बन सकें, अतः व्याकरण पढ़ना चाहिए।।

चत्वारि – 'चत्वारि श्रृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेश' ।। इति। चत्वारि श्रृङ्गाणि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च। त्रयो अस्य पादाः –त्रयः काला भूतभविष्यद्वर्त्तमानाः। द्वे शीर्षे द्वौ शब्दात्मानौ नित्यः कार्यश्च। सप्त हस्तासो अस्य सप्त विभक्तयः। त्रिधा बद्धः त्रिषु स्थानेषु बद्धः, उरसि कण्ठे शिरसीति। वृषभो वर्षणात्। रोरवीति शब्दं करोति। कुत एतत् ? रौतिः शब्दकर्मा। महो देवो मर्त्या आविवेशेति महान् देवः शब्दः। मर्त्या मरणधर्माणो मनुष्यास्तानविवेश।। महता देवेन नः साम्यं यथा स्यादित्यध्येयं व्याकरणम्।।

अपर आह– 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रिणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।। 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि'। चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च। 'तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः'। मनस ईषिणो मनीषिणः। 'गुहा त्रिणि निहिता नेङ्गयन्ति' गुहायां त्रिणि निहितानि नेङ्गयन्ति न चेष्टन्ते न निमिषन्तीत्यर्थः। 'तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति'। तुरीयं वा एतद्वाचो यन्मनुष्येषु वर्तते। चतुर्थमित्यर्थः। चत्वारि ।।

आठवें प्रयोजन का उदाहरण देते हैं– ''चत्वारि।'' 'इसके चार सींग है, तीन पैर हैं, दो सिर हैं, और सात हाथ हैं। तीन प्रकार से बंधा हुआ वृषभ आवाज करता है। महान् देव मनुष्यों में प्रवेश किए हुए है।' चार सींग चार पदसमूह हैं, वे हैं नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। इसके तीन पैर तीन काल हैं भूत, भविष्यत्च और वर्तमान। दो सिर शब्द के दो स्वरुप हैं नित्य (मानस–रुप स्फोट) और अनित्य (वाचिकरुप ध्वनि)। सात हाथ इसकी सात विभक्तियां हैं। तीन प्रकार से बंधे हुए का अर्थ है तीन स्थानों में, अर्थात् छाती, कण्ठ और सिर में बन्धा हुआ। (कामनाओं का) वर्षण करने से वह वृषभ कहलाता है। रोरवीति का अर्थ है आवाज करता है। यह कैसे ? रु–धातु शब्द करने अर्थ में है। महान् देव–रुप शब्द मरणशील मनुष्यों में व्याप्त है। उस महान् देव के साथ हमारा सम्बन्ध हो, इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।।

दूसरा कहता है–'वाणी चार पदों में परिच्छिन्न है। उन (चार पदों) को मननशील ब्राह्मण जानते हैं। (उनमें से) तीन पद तो गुहा में स्थित होकर चेष्टा नहीं करते। वाणी के चौथे भाग को (साधारण) मनुष्य बोलते हैं।' वाणी के चार परिच्छिन्न पद हैं चार पदसमूह नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। उन्हें मननशील ब्राह्मण जानते हैं। मन पर अधिकार रखने वाले मनीषी कहलाते हैं। 'गुहा .... नेङ्गयन्ति' का अर्थ है, तीन भाग तो गुहा में स्थित होकर चेष्टा

नहीं करते, अर्थात् झपकते नहीं। 'तुरीयं .... वदन्ति', वाणी वह चौथा भाग ही है, जो मनुष्यों में है, अर्थात् साधारण मनुष्यों के व्यवहार में आता है।।

उतत्वः – 'उत त्वः पश्यन्नददर्श वाचमुत त्वः श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।' 'उतत्वः' अपि खल्वेकः। पश्यन्नपि न पश्यति वाचम्। अपि खल्वेकः श्रृण्वन्नपि न श्रृणोत्येनामिति। अविद्वांसमाहार्धम्। 'उतो त्वस्मै तन्वं विनस्रे' तनुं विवृणते। 'जायेव पत्य उशती सुवासाः'। तद्यथा जाया पत्ये कामयमाना सुवासाः स्वमात्मानं विवृणुते, एवं वाग्वाग्विदे स्वात्मानं विवृणुते। वाङ्नो विवृणुयादात्मानमित्यध्येयं व्याकरणम्। उतत्वः।।

नवें प्रयोजन का उदाहरण देते हैं– ''उतत्वः।'' 'कोई एक तो वाणी को देखता हुआ भी देख नहीं पाता, कोई उसे सुनता हुआ भी सुन नहीं पाता।' यह आधा भाग अविद्वान का वर्णन करता है। और किसी दूसरे के प्रति (यह वाणी) अपने आप को खोल देती है, अपने स्वरुप को प्रकट कर देती है। जैसे पति की कामना करती हुई, सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए, पत्नी अपने आपको पति के प्रति प्रकट कर देती है। इसी प्रकार वाणी भी अपने ज्ञाता के प्रति अपने स्वरुप को प्रकट कर देती है। वाणी अपने स्वरुप को हमारे प्रति भी प्रकट करे, इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।।

सक्तुमिव – 'सक्तुमिव तितउंना पुनन्तो य धीरा मनसा वाचमक्रत। अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीनिहिताऽधिवाचि'।। सक्तुः सचतेर्दुर्धावो भवति। कसतेर्वा विपरीताद्विकसितो भवति। तितउ परिपवनं भवति, ततवद्वा तुन्नवद् वा। धीरा ध्यानवन्तः। मनसा प्रज्ञानेन। 'वाचमक्रत' वाचमकृषत। अत्रा सखायः सख्यानि जानते। अत्र सखायः सन्तः सख्यानि जानते सायुज्यानि जानते। क्व? य एष दुर्गो मार्गः, एकगम्यो वाग्विषयः। के पुनस्ते? वैयाकरणः। कुत एतत् ? 'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताऽधिवाचि'। एषां वाचि भद्रा लक्ष्मीर्निहिता भवति। लक्ष्मीर्लक्षणाद् भासनात्परिवृढ़ा भवति। सक्तुमिव।।

सारस्वतीम्– याज्ञिकाः पठन्ति – 'आहिताग्निरपशब्दं प्रयुज्य प्रायश्चित्तीयां सारस्वती– मिष्टिं निर्वपेत्' इति। प्रायश्चित्तीया माभूमेत्यध्येयं व्याकरणम्। सारस्वतीम्।।

दशम्यां पुत्रस्य–याज्ञिकाः पठन्ति–'दशम्युत्तरकाल पुत्रस्य जातस्य नाम विदध्यात् घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमवृद्धं त्रिपुरुषानूकमनरिप्रतिष्ठितम्। तद्धि प्रतिष्ठिततमं भवति। द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा नाम कृतं कुर्यान्न तद्धितम्' , इति। ना चान्तरेण व्याकरणं कृतस्तद्धिता वा शक्या विज्ञातुम। दशम्यां पत्रस्य।।

व्याकरण के अध्ययन का दसवाँ प्रयोजन स्पष्ट करते हैं– सक्तुमिव। जैसे सत्तुओं को चालनी से छानते हैं (सत्तू और छिलके को अलग–अलग करते हैं),

वैसे जहां बुद्धिमान मनुष्य अपनी बुद्धि से वाणी का विश्लेषण करते हैं, वहां वे मित्र बन कर (इस वाणीकी) मित्रता का अनुभव करते हैं। उनकी वाणी में कल्याणमयी शोभा स्थित रहती है। सक्तु शब्द सच् धातु से बना है, इसे साफ करना कठिन होता है। अथवा सक्तु शब्द कस् धातु के आद्यन्त–विपर्यय करने से बना है, यह खिला हुआ होता है। तितउ है चालनी, वा फैली हुई है, अथवा वह छिद्रों वाली है। धीर से अभिप्राय है ध्यान वाले। मनसा अर्थात् प्रकृष्ट ज्ञान से। वाचम् अक्रत का अर्थ हुआ वाणी को व्याकृत करते हैं, विश्लेषण करते हैं। यहां मित्र बनकर मित्रता का अनुभव करते हैं, सायुज्य को प्राप्त करते हैं। कहां ? यह जो एक (ज्ञान) से प्राप्य, वाणी का दुगर्म मार्ग है, वहां। तो वे है कौन ? वैयाकरण। यह कैसे ? इनकी वाणी में कल्याणमयी शोभा स्थित होती है। लक्ष्मी को इसलिए लक्ष्मी कहते है क्योंकि वह लक्षण करती है, चमकने से समृद्ध होती है।।

ग्यारहवाँ प्रयोजन बताते हुए उदाहरण देते हैं – ''सारस्वतीम्''। कर्मकाण्डियों का पाठ है– 'अग्नि का आधान करके, अपशब्द का प्रयोग हो जाने पर, प्रायचिश्त्त के निमित्त सरस्वती का यज्ञ करे'। प्रायचिश्त्त के भागी न बनें, अतः व्याकरण पढ़ना चाहिए।।

बारहवें प्रयोजन का उदाहरण है – दशम्यां पुत्रस्य । याज्ञिकों का कथन है– '(पत्र के जन्म से) दसवीं (रात) के बीतने पर (अर्थात् ग्यारहवें दिन) पुत्र का नामकरण करना चाहिए, उस नाम के आदि में सघोष वर्ण हो, मध्य में अन्तःस्थ वर्ण हो, वह नाम वृद्धि स्वर से युक्त न हो, तीन पीढ़ियों का स्मरण कराता हो, शत्रु के नाम के रुप में प्रसिद्ध न हो, दो अक्षरों वाला या चार अक्षरों वाला कृदन्त नाम रखना चाहिए, तद्धित नहीं। ऐसा नाम सबसे अधिक प्रशस्त होता है।' व्याकरण के बिना कृदन्त या तद्धित समझे नहीं जा सकते।। अतः व्याकरण पढ़ना चाहिये ।

सुदेवो असि– 'सुदेवा असि वरुण, यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव'। 'सुदेवो असि वरुण' सत्यदेवोऽसि। 'यस्य ते सप्त सिन्धवः' सप्त विभक्तयः। 'अनुक्षरन्ति काकुदम्' तालु। काकुर्जिह्वा, सास्मिन्नुद्यित इति काकुदम्। 'सूर्म्यं सुषिरामिव। तद्यथा शोभनामूर्मि सुपिरामग्निरन्तः प्रविश्य दहति, एवं ते सप्त विन्धवः सप्तविभक्तयसस्ताल्व– नुक्षरन्ति। तेनासि सत्यदेवः। सत्यदेवाः स्यामेत्यध्येयं व्याकरणम्। सुदेवो असि।।

किं पुनरिदं व्याकरणमेवाधिजिगांसमानेभ्यः प्रयोजन मन्वाख्यायते, न पुनरन्यदपि किंचित् ? 'ओम्' इत्युक्त्वा वृत्तान्तशः शमित्येवमादीन् शब्दान् पठन्ति ।

पुराकल्प एतदासीत्–संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते। तेभ्यस्तत्तत्स्थान– करण–नादाऽनुप्रदानज्ञेभ्यो वैदिकाः शब्दा उपदिश्यन्ते। तदद्यत्वे न तथा। वेदमधीत्य त्वरिता वक्तारो भवन्ति– 'वेदान्नो वैदिकाः शब्दाः सिद्धाः, लोकाच्च

लौकिकाः। अनर्थकं व्याकरणम्' इति।। तेभ्य एवं विप्रतिपन्नबुद्धिभ्योऽध्येतृभ्यः सुहृद् भूत्वा आचार्य इदं शास्त्रमन्वाचष्टे – इमानि प्रयोजना– न्यध्येयं व्याकरणम् – इति।

व्याकरणाध्ययन का तेरहवाँ प्रयोजन स्पष्ट करते हैं – ''सुदेवो असि।'' हे वरुण, तु सुदेव, अर्थात् सत्यदेव है तेरी सात नदियां, अर्थात् सात विभक्तियां, तालु में बहती हैं। काकुद तालु है, क्योंकि काकु का अर्थ है जिह्वा, उसे इस (तालु) में ऊपर लगाया जाता है। सूर्म्यं सुषिराम् इव– जिस प्राकर अग्नि छिद्रों वाले लोहे के पिण्ड के अन्दर घुसकर उसे जलाकर शुद्ध कर देती है, उसी प्रकार तेरी सात नदियां अर्थात् सात विभक्तियां तालु को शुद्ध कर देती हैं। इसी से तू सत्यदेव है। हम भी सत्यदेव बनें, इसलिए व्याकरण पढ़ना चाहिए।।

पश्न उपस्थित होता है कि, क्या कारण है कि केवल व्याकरण पढ़ने वालों के लिए ही प्रयोजन बताए जाते हैं, किसी और विषय को पढ़ने वालों के लिए नहीं ? (वेद पढ़ने वाले) 'ओम्' कहकर 'शम्' (शन्नो देवीः') आदि मन्त्रों को प्रपाठक अनुसार पढ़ना शुरु कर देते हैं।

उत्तर देते हैं कि, पुरातन काल में ऐसा था, (उपनयन और वेदारम्भ) संस्कार के पश्चात् ब्राह्मण व्याकरण पढ़ा करते थे। वर्णों के उच्चारण–स्थान (कण्ठ, तालु आदि), करण (=साधन, जिह्वा आदि) और अनुप्रदान (=प्रयत्न) को जान लेने पर, उन्हे वैदिक शब्दों का ज्ञान कराया जाता था। पर आजकल वैसा नहीं। आजकल पहले ही वेद के वक्ता बन जाते हैं और सोचते हैं कि, वेद से हमने वैदिक शब्द जान लिये हैं और लोक से लौकिक शब्द। अब व्याकरण पढ़ने का प्रयोजन नहीं। इस प्रकार के विपरीत विचारों वाले उन विद्यार्थियों के लिए मित्र बनकर आचार्य इस शास्त्र का उपदेश कर रहे हैं। इन प्रयोजनों के कारण व्याकरण को पढ़ना चाहिये ।

(अनुशासन–रीति–निरुपणम्)

उक्तःशब्दः । स्वरुपमप्युक्तम्। प्रयोजनान्यप्युक्तानि। शब्दानु– शासनमिदानीं कर्त्तव्यम्। तत्कथं कर्त्तव्यम् ? किं शब्दोपदेशः कर्तव्यः, आहोस्विदप– शब्दोपदेशः, आहोस्विदुभयोपेदेश इति ? अन्यतरोपदेशेन कृतं स्यात्। तद्यथा भक्ष्यनियमेनाभक्ष्यप्रतिषेधो गम्यते। 'पञ्च पञ्च नखा भक्ष्याः' इत्युक्ते गम्यते एतद् – अतोऽन्येऽभक्ष्याः इति। अभक्ष्यप्रतिषेधेन वा भक्ष्यनियमः। तद्यथा 'अभक्ष्यो ग्राम्यकुक्कुटः, अभक्ष्यो ग्राम्यसूकरः' इत्युक्ते गम्यत एतद्– आरण्यो भक्ष्य इति। एवमिहापि। यदि तावच्छब्दोपदेशः क्रियते, गौरित्येतस्मिन्नुपदिष्टे गम्यत एतद् गाव्यादयोऽपशब्दाः इति। अथाप्यपब्दोपदेशः क्रियते, गाव्यादिषूप दिष्टेषु गम्यत एतत्– गौरित्येष शब्द इति।

अनुशासन–रीति का निश्चय करते हुए कहते हैं कि, इस शब्द का प्रतिपाद्य विषय, लौकिक और वैदिक शब्द बता दिया है। उस (शब्द) का स्वरुप भी कह दिया है। प्रयोजन भी समझा दिए है। अब शब्दों का अनुशासन अर्थात् = नियम– प्रतिपादन करना है। सो कैसे करना चाहिए ? क्या (शुद्ध) शब्दों का उपदेश किया जाए, अथवा अशुद्ध शब्दों को बताया जाए, अथवा दोनों का ही निर्देश किया जाए ? दोनों में से एक का उपदेश करने से ही काम चल लाएगा। जैसे भक्ष्य का नियम करने से अभक्ष्य का निषेध (स्वयं) मालूम पड़ जाता है। 'पंजों वाले (=पांच नाखुनों वाले) पंच ही प्राणी खाने योग्य है'– ऐसा कहने पर यह (स्वतः) ज्ञात हो जाता है कि इनके अतिरिक्त प्राणी नहीं खाने चाहिएं। अथवा अभक्ष्यों का निषेध करने पर (स्वतः ही) भक्ष्यों का नियम (ज्ञात) हो जाता है। जैसे, 'गांव का मुर्गा नहीं खाना चाहिए, गांव का सुअर नहीं खाना चाहिए' यह कहे जाने पर (अपने आप) जाना जाता है कि जंगली खा लेना चाहिए। इसी प्रकार यहां पर भी। यदि शुद्ध शब्दों का उपदेश कर दिया जाता है, 'गौ' ऐसा बता देने पर (अपने आप) यह मालूम पड़ जाएगा कि 'गावी' आदि अशुद्ध शब्द हैं। और यदि अशुद्ध शब्दों को गिना दिया जाए, तो गावी आदि के बता देने पर (स्वतः) यह ज्ञात हो जाएगा कि 'गौ' यह शब्द शुद्ध है।

किं पुनरत्र ज्यायः ? लघुत्वाच्छब्दोपदेशः। लघीयात्र्छब्दो– पदेशः। गरीयानपशब्दोपदेशः। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा–गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रंशाः।। इष्टान्वाख्यानं खल्वपि भवति। अथैतस्मिन् शब्दोपदेशे सति किं शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठः कर्त्तव्य' ? गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इत्येवमादयः शब्दाः पठितव्याः ? नेत्याह। अनभ्युपाय एष शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपद– पाठः। एवं हि श्रूयते– 'बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदो– क्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच, नान्तं जगाम'। बृहस्पतिश्च प्रवक्ता, इन्द्रश्चाध्येता, दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालो न चान्तं जगाम। किं पुनरद्यत्वे ! यः सर्वथा चिरञ्जीवति वर्षशतं जीवति। चतुर्भिश्च प्रका– रेर्विद्योपयुक्ता भवति– आगमकालेन, स्वाध्याय– कालेन, प्रवचनकालेन, व्यवहार– कालेनति। तत्र चास्यागमकाले– नैवायुः कृत्स्नं पर्युपयुक्तं स्यात्। तस्मादनभ्युपायः शब्दानां प्रतिपत्तौ प्रतिपदपाठः। कथं तर्हीमे शब्दाः प्रतिपत्तव्याः ? किंचित्सामान्य– विशेषवल्लक्षणं प्रवर्त्यम् ? येनाल्पेन यत्नेन महतो महतः शब्दौघानु प्रतिपद्येरन्। किं पुनस्तत् ? उत्सर्गापबादौ। कश्चिदुत्सर्गः कर्तव्यः, कश्चिदपवादः। कथंजातीयकः पुनरुत्सर्गः कर्तव्यः, कथं– जातीयकोऽपवादः ? सामान्येनात्सर्गः कर्तव्यः। तद्यथा– 'कर्मण्यण'। तस्य विशेषणाऽपवादः। तद्यथा– 'आतोऽनुपसर्गे कः'।

तो फिर इन दोनों में से कौन–सा (उपाय) बढ़िया है ? लाघव (=छोटा होने) के कारण शुद्ध शब्दों का उपदेश (ही बढ़िया उपाय) है। शुद्ध शब्दों का उपदेश (अशुद्ध शब्दों को गिनाने की अपेक्षा) अधिक छोटा है। अशुद्ध शब्दों का उपदेश (अपेक्षाकृत) बड़ा है। एक–एक शुद्ध शब्द के बहुत से अपभ्रंश है। जैसे –

'गौ' इस शुद्ध शब्द के लिए गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका, इस प्रकार के कई अपभ्रंश हैं।

इसके अतिरिक्त (शुद्ध शब्दों के उपदेश से) अभीष्ट (विषय) का भी वर्णन हो जाता है।

अब शुद्ध शब्दों का उपदेश मान लेने पर, क्या शब्दों के ज्ञान के लिए प्रत्येक पद को पढ़ना होगा ? गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती, शकुनिः, मृगः, ब्राह्मणः, इस प्रकार (एक-एक करके) सब शब्दों को कहना होगा ? (आचार्य) कहता है, नहीं। प्रत्येक पद का पढ़ लेना शब्दों के ज्ञान का कोई उपाय नहीं।

ऐसा सुनने में आता है – '(देवगुरु) बृहस्पति ने एक हजार दिव्य वर्षों तक इन्द्र को एक-एक पद कहकर शब्दों का पारायण पढ़ाया, पर समाप्ति तक न पहुंचा पाया।' (देवगुरु) बृहस्पति सा पढ़ाने वाला हो, (देवराज) इन्द्र जैसा पढ़ने वाला हो, हजार दिव्य वर्ष पढ़ने का समय हो, तो भी पाठ समाप्ति तक न पहुंच पाया। आजकल का तो कहना ही क्या ! जो बहुत जीता है, वह सौ बरस ही जी पाता है। चार प्रकार के विद्या का उपयोग होता है – प्राप्ति (=गुरु से पढ़ने) के समय, स्वयं अध्ययन (=आवृत्ति) करते समय, पढ़ाते समय और व्यवहार (=यज्ञादि कर्मों में प्रयोग) के समय। उस (प्रतिपद पढ़ने की) अवस्था में तो इस (विद्यार्थी) की सारी आयु गुरु से पढ़ते-पढ़ते ही समाप्त हो जाएगी। अतः प्रत्येक पद का पाठ शब्दों के ज्ञान का उपाय नहीं हो सकता।

तो फिर इन शब्दों का ज्ञान किस प्रकार किया जाए? सामान्य और विशेष जताने वाला कोई साधन अपनाना चाहिए, जिससे थोड़े से परिश्रम से बड़ी-बड़ी शब्द-राशियों का जान जाएं। वह (साधन) क्या हो सकता है? उत्सर्ग (=सामान्य नियम,विधि) और अपवाद (=विशेष नियम)। कोई उत्सर्ग बनाना चाहिए, और कुछ अपवाद। किस प्रकार का उत्सर्ग और किस प्रकार का अपवाद? सामान्य नियम से उत्सर्ग बनाना चाहिए। जैसे – 'कर्मण्यण्' (पा. 3. 2.1)। और विशेष नियम से उसका अपवाद (बनाना चाहिए)। जैसे– 'आतोऽनुपसर्गे कः' (पा. 3.2.3)

तात्पर्य यह है कि, पहले सूत्र (पा. 3.2.1) से सामान्य नियम बनाया गया है कि कर्म उपपद होने पर धातु मात्र से 'अण्' प्रत्यय हो, परन्तु धातु यदि उपसर्ग-रहित और आकारान्त है तो 'अण्' प्रत्यय न होकर 'क' प्रत्यय हो, यह विशेष नियम दूसरे सूत्र (पा. 3.2.3) से बना दिया गया है। दोनों सूत्रों के उदाहरण क्रम से ये है – कुम्भं करोति = कुम्भ+कृ+अण्= कुम्भकारः। कम्बलं ददाति = कम्बल+दा+क = कम्बलदः।

पदानां जाति-व्यक्तिवाचकत्वनिर्णयः– किं पुरनाकृतिः पदार्थः, आहोस्विद् द्रव्यम्? उभयमित्याह। कथं ज्ञायते ?

उभयथा ह्याचार्येण सूत्राणि पठितानि–आकृति पदार्थे मत्वा – 'जात्या–ख्यायामे–कस्मिन्बहु– वचनमन्यतरस्याम्'। इत्युच्यते। द्रव्यं पदार्थ मत्वा 'सरुपाणाम्' इत्येकशेष आरभ्यते।

शब्दस्य नित्यत्वाऽनित्यत्व–विचारः किं पुनर्नित्यः शब्दः, आहोस्विकार्यः ?

संग्रह एतत्प्राधान्येन परिक्षितम्– नित्यो वां स्यात्कार्यों वेति। तत्रोक्ता दोषाः। प्रयोजनान्यप्युक्तानि। तत्र त्वेष निर्णयः– यद्येव नित्यः, अथापि कार्यः, उभयथापि लक्षणं प्रवर्त्यमिति।

शब्दों की जाति–वाचकता या व्यक्ति–वाचकता का निश्चय करते हुए कहते हैं कि, क्या पद का अर्थ जाति है या व्यक्ति (द्रव्य)? (वैयाकरण) कहता है– दोनों (जाति और व्यक्ति)। पुनः प्रश्न होता है कि, यह कैसे कहा जाता है ?

आचार्य (पाणिनि) ने दोनों प्रकार से (अर्थात् पद को जाति–वाचक और व्यक्ति–वाचक दोनों तरह मानकर) सत्र बनाए हैं। जाति को पदार्थ मानकर 'जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचन– मन्यतरस्याम्' (पा. 1.2.58) यह कहा है। और व्यक्ति को पदार्थ मानकर 'सरुपापाणामेकशेष एक विभक्तौ (पा.1.2.64) सूत्र से एकशेष का विधान किया है।

अब शब्द के नित्य या अनित्य होने पर विचार करते हैं कि, क्या शब्द नित्य है या कार्य (उत्पाद्य, अनित्य)?

व्याडि–रचित 'संग्रह'–गन्थ में इस पर मुख्य रुप से विचार हुआ है कि (शब्द) नित्य है या अनित्य। यहां पर (दोनों पक्षों में) दोष कहे हैं और (शास्त्र–प्रवृत्ति के) प्रयोजन भी कह दिए है। वहां पर यह निर्णय लिया गया है कि शब्द चाहे नित्य हो चाहे अनित्य, दोनों ही अवस्थाओं मे उसका लक्षण (शास्त्र–विधान) करना ही चाहिए।

कथं पुररिदं भगवतः पाणिनेराचार्यस्य लक्षणं प्रवृत्तम् ?

।। सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे ।।

सिद्धे शब्दे अर्थे सम्बन्धे चेति। अथ सिद्धशब्दस्य कः पदार्थः? नित्यपर्यायवाची सिद्ध– शब्दः। कथं ज्ञायते? यत्कूट– स्थेष्वविचालिषु भावेषु वर्तते। तद्यथा–सिद्धा द्यौः, सिद्धा पृथिवी, सिद्धमाकाशमिति। ननु च भौः कार्येष्वपि वर्तते। तद्यथा– सिद्ध ओदनः, सिद्धः सूपः, सिद्धा यवागूरिति। यावता कार्येष्वपि वर्तते, तत्र कुत एतन्नित्यपर्यायवाचिनो ग्रहणम्, न पुनः कार्ये यः सिद्धशब्द इति? संग्रहे तावत्कार्यप्रतिद्वन्द्विभावान्मन्यामहे नित्य– पर्यायवाचिनो ग्रहणमिति। इहापि तदेव। अथवा सन्त्येक– पदान्यप्यवधारणानि । तद्यथा–अब्भक्षो वायुभक्ष इति – अप एवं भक्षयति, वायुमेव भक्षयतीति गम्यते। एवमिहापि सिद्ध एव, न साध्य इति।

अथवा पूर्वपदलोपोऽत्र द्रष्टव्यः – अत्यन्तसिद्धः सिद्ध इति। तद्यथा–देवदत्तो दत्तः, सत्यभामा भामेति।

अथवा ''व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्'' इति नित्यपर्यायवाचिनो ग्रहणमिति व्याख्यास्यामः।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि, भगवान पाणिनि आचार्य का शास्त्र कैसे (=किस पक्ष को आधार मानकर) चला है? उत्तर देते हैं कि 'शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध के सिद्ध अर्थात् नित्य रहते हुए।' 'सिद्ध' शब्द का अर्थ क्या है ? 'सिद्ध' शब्द 'नित्य' का समानार्थक है।

यह कैसे मालूम पड़ता है? कहते हैं कि, यह शब्द एक स्वरुप में स्थित, अपरिवर्तनशील भावों अर्थात् पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है। जैसे–'द्युलोक सिद्ध है', 'पृथिवी सिद्ध है', 'आकाश सिद्ध है' पुनः कहते हैं कि अरे, यह शब्द अनित्यों के लिए भी प्रयुक्त होता है। जैसे– 'भात सिद्ध हो गया' (बन गया), 'दाल सिद्ध हो गई' (बन गई), 'लप्सी सिद्ध हो गई' (बन गई)। चूंकि (यह शब्द) अनित्यकार्यों के लिए भी प्रयुक्त होता है, तो यहां कैसे इसे नित्य का समानार्थक माना जाए, और अनित्य के अर्थ में नहीं ? समाधान करते हैं कि, 'संग्रह' ग्रन्थ में अनित्य का प्रतियोगी अर्थात् विपरीतार्थक होने से वहां यह नित्य का समानार्थक लिया जाता है। यहां भी वही (अर्थ) है। अथवा अकेले पद से भी अवधारण (नियमन) होता है। जैसे– 'अब्भक्ष' और 'वायुपक्ष' से 'पानी ही पीता है', 'हवा ही खाता है' यहा ज्ञात होता है। इसी प्रकार यहां पर भी, 'वह सिद्ध ही है, साध्य (=कार्य) नहीं, (ऐसा ज्ञात होता है)। अथवा यहां पर पूर्वपद का लोप समझना चाहिए। 'अत्यन्त (=बिल्कुल) सिद्ध' को (केवल) ''सिद्ध' शब्द (से ही कह दिया गया है)। जैसे – देवदत्त को (केवल) दत्त, और सत्यभामा को (केवल) भामा (कह देते है)। अथवा व्याख्या (स्पष्टीकरण) से विशेष समझाया जा सकता है, केवल सन्देह हो जाने से (कोई नियम) अनियम नहीं हो जाता। हम ऐसी व्याख्या या स्पष्टीकरण कर देंगे कि (यहां पर सिद्ध शब्द को) नित्य का समानार्थक समझा जाए ।

किं पुनरनेन वर्ण्येन। किं न महता कण्ठेन नित्यशब्द एवोपात्तः, यस्मिन्नुपादीयमानेऽसंदेहः स्यात्? मङ्गलार्थम्। माङ्गलिक आचार्यो महतः शास्त्रौघस्य मङ्गलार्थं सिद्धशब्दमादितः प्रयुङ्क्ते मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते, वीरपुरुषाणि च भवन्ति, आयुष्मत्पुरुषाणि च। अध्येतारश्च सिद्धार्था यथा स्युरिति। अयं खलु नित्यशब्दो नाऽवश्यं कूटस्थेष्वविचालिषु भावेषु वर्तते। किं तर्हि? आभीक्ष्ण्येऽपि वर्तते। तद्यथा नित्यप्रहसितो नित्यप्रजल्पित इति। यावताऽऽ–भीक्ष्ण्येऽपि वर्तते तत्राप्यनेनैवार्थः स्यात्–'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्' इति। पश्यति त्वाचार्यो मङ्गलार्थश्चैव शिद्धशब्द आदितः प्रयुक्तो भविष्यति, शक्ष्यामि चैनं नित्यपर्यायवाचिनं वर्णयितुमिति। अतः सिद्धशब्द एवोपात्तो न नित्यशब्दः ।।

तो फिर ऐसे शब्द से क्या लाभ जिसका इतना वर्णन (=स्पष्टीकरण) करना पड़े? क्यों न बड़े खुले गले से नित्य शब्द ही कह डाला, जिसके कहने से सन्देह ही न रहता ?

मङ्गल के लिए सिद्ध शब्द का प्रयोग किया है। मङ्गल चाहता हुआ आचार्य (कात्यायन) अपने महान् ग्रन्थ (वार्तिक–समूह) के मङ्गल के लिए आदि में 'सिद्ध' शब्दका प्रयोग करता है, क्योकि मङ्गल से प्रारम्भ होनेवाले शास्त्र प्रचलित होते हैं, इनके पढ़ने वाले वीर (=शास्त्रार्थ में विजेता) और चिरायु होते है। (इस वार्तिक शास्त्र के) पढ़ने वाले सफल मनोरथ हो सकें (अतः वार्तिककार कात्यायन ने अपना ग्रन्थ 'सिद्ध' शब्द से प्रारम्भ किया है)। और यह नित्य शब्द भी एकरुप में स्थित, अपरिवर्तनशील पदार्थों के लिए ही प्रयुक्त होता हो, यह आवश्यक नहीं। प्रश्न है तो क्या कहते हैं? कि, बार–बार या लगातार अर्थ में भी (यह नित्य शब्द) प्रयुक्त होता है। जैसे– नित्य–प्रहसितः (=बार–बार हंसने वाला), नित्य– प्रजल्पितः (=लगातार बोलने वाला)। चूंकि यह शब्द बार–बार और लगातार अर्थ में भी है, वहां भी इसी से काम चलेगा– 'व्याख्या से विशेष ज्ञान होता है, सन्देहमात्र से लक्षण अलक्षण नहीं हो जाता'।

परन्तु आचार्य (कात्यायन) समझते है कि आदि में प्रयुक्त हुआ 'सिद्ध' शब्द मङ्गल के लिए भी रहेगा और उसे नित्य का समानार्थक भी बता सकूंगा। अतः सिद्ध शब्द का ही प्रयोग किया है, नित्य शब्द का नही।

अथ कं पुनः पदार्थ मत्वा एष विग्रहः क्रियते–'सिद्धे शब्देऽर्थे सम्बन्धे चेति? आकृति मित्याह । कुत एतत् ? आकृतिर्हि नित्या, द्रव्यमनित्यम्। अथ द्रव्ये पदार्थे कथं विग्रहः कर्तव्यः? सिद्धे शब्दे अर्थसम्बन्धे चेति। नित्यो ह्यर्थव– तामर्थैरभिसम्बन्धः।।

अथवा द्रव्य एव पदार्थे एष विग्रहो न्याय्यः– सिद्धे शब्दे अर्थे सम्बन्धे चेति। द्रव्यं हि नित्यमाकृतिरनित्या।

कथं ज्ञायते? एवं हि दृश्यते लोके मृत् कयाचिदाकृत्या युक्ता पिण्डो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्य घटिकाः क्रियन्ते, घटिकाकृतिमुपमृद्य कुण्डिकाः क्रियन्ते। तथा सुवर्णं कयाचिदाकृत्या युक्तं पिण्डो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्य रुचकाः क्रियन्ते, रुचकाकृतिमुपमृद्य कटकाः क्रियन्ते, कटकाकृतिमुपमृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते, पुनरावृत्तः सुवर्णपिण्डः पुनरपरयाकृत्या युक्तः खदिराङ्गारसवर्णे कुण्डले भवतः। आकृतिरन्या चान्या च भवति, द्रव्यं पुनस्तदेव। आकृत्युपमर्देन द्रव्यमेवावशिष्यते।।

अब किसे पदार्थ मानकर यह विग्रह किया गया है– 'शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध के नित्य होने पर ? मीमांसक कहता है, आकृति को। यह कैसे ? क्योकि आकृति नित्य है, और द्रव्य अनित्य है। अब यदि द्रव्य को पदार्थ मान लिया जाए, तो विग्रह कैसे करना चाहिए ? 'शब्द और उसका अर्थ

से सम्बन्ध नित्य होने पर' – ऐसा। सार्थक शब्दों का अपने अर्थों के साथ सम्बन्ध नित्य होता है। अथवा द्रव्य को भी पदार्थ मानते हुए यह विग्रह उचित है– 'शब्द, अर्थ और उन दोनों के सम्बन्ध के नित्य होन पर'। द्रव्य तो नित्य होता है, आकृति अनित्य होती है। प्रश्न है कि

यह कैसे मालूम होता है? तो कहते हैं कि संसार में ऐसा देखते हैं, मिट्टी किसी आकृति से जुड़ कर पिण्ड (गोला) बन जाती है। पिण्ड आकृति को मसल कर मटकियां बन जाती हैं। मटकियों की आकृति को मिटा कर कुण्डिकाएं बना ली जाती है। उसी प्रकार सोना किसी आकृति से युक्त होकर डली बन जाता है। डली की आकृति को हटाकर रुचक बनाए जाते हैं, रुचकों की आकृति को मिटाकर कड़े बना लिए जाते है। कड़ों की आकृति को हटाकर स्वस्तिक बनाए जाते हैं। तदनन्तर गलाया हुआ सोना फिर डली बनकर, दोबारा किसी दूसरी आकृति से युक्त होकर, खैर लकड़ी के धधकते अंगारों के समान चमक वाले कुण्डलों के रुप में बदल जाता है। आकृति (बदल–बदल कर) भिन्न–भिन्न हो जाती है, परन्तु द्रव्य वही रहता है। आकृति–विशेष के नष्ट होने पर द्रव्य ही बचा रहता है।

आकृतावपि पदार्थ एष विग्रहो न्याय्यः –सिद्धे शब्दे अर्थे समब्न्धे चति। ननु चोक्तं– आकृतिरनित्या, इति। नैतदस्ति, नित्याऽऽकृतिः। कथम् ? न क्वचिदुपरतेति कृत्वा सर्वत्रोपरता भवति। द्रव्यान्तरस्था तूपलभ्यते। अथवा नेदमेव नित्यलक्षणम्–ध्रुवं कूटस्थमविचाल्यनपायोपजनविकार्यनुत्पत्त्यवृद्ध्यव्यययोगि यत्तन्नित्य –मिति। तदपि नित्यं तस्मिंस्तत्त्वं न विहन्यते। किं पुनस्तत्त्वम्? तद्भावस्तत्त्वम्। आकृतावपि तत्त्वं न विहन्यते।। अथवा किं न एतेन–इदं नित्यमिदमनित्यमिति। यन्नित्यं तं पदार्थ मत्वैष विग्रहः क्रियते–सिद्धे शब्देऽर्थे सम्बन्धे चेति।

लोकव्यवहारस्य निर्णायकत्वेऽपि शास्त्रज्ञानस्य उपयोगिता कथं पुनर्ज्ञायते – सिद्धः शब्दोऽर्थः सम्बन्धेश्चेति?

।। लोकतः।।

यल्लोकेऽर्थमर्थमुपादाय शब्दान् प्रयुञ्जते, नैषां निर्वृतौ यत्नं कुर्वन्ति। ये पुनः कार्या भावा निर्वृत्तौ तावतेषां यत्नः क्रियते। तद्यथा– घटेन कार्य्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाऽऽह– 'कुरु घटं, कार्यमनेन करिष्यामीति', न तद्वच्छब्दान् प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुलं गत्वाऽऽह–'कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्ये' इति, तावत्ये– वार्थमुपादाय शब्दान्प्रयुञ्जते।।

आकृति को पदार्थ मानकर भी यही विग्रह उचित है– 'शब्द, अर्थ और उन दोनों के सम्बन्ध के नित्य होने पर'। किन्तु अभी कहा था –'आकृति अनित्य है'। बात यह नहीं। आकृति तो नित्य है। कैसे ? आकृति कहीं एक द्रव्य में उपरत हो जाने अर्थात् हट जाने से सब स्थानों से तो उपरत नहीं हो जाती।

दूसरे द्रव्यों में तो उपलब्ध होती है। अथवा नित्य का इतना ही लक्षण नहीं है– जो स्थिर, एक स्वरुपावस्थित, अपरिवर्तनशील, अपचय–उपचय–विकारों से रहित, उत्पत्ति–बुद्धि– विनाश से रहित हो, वही नित्य है। वह भी नित्य होता है जिसमें तत्त्व नष्ट न हो। तो तत्व क्या है? किसी वस्तु का अपनापन अर्थात् उसका स्वभाव, धर्म या तत्त्व है। आकृति में भी तत्त्व नष्ट नहीं होता। अथवा हमें इससे क्या– यह नित्य है या अनित्य? जो भी नित्य है उसे पदार्थ मानकर यह विग्रह किया जाता है– 'शब्द, अर्थ और उन दोनों के सम्बन्ध के नित्य होने पर'।

लोक–व्यवहार के निर्णायक होने पर भी शास्त्र–ज्ञान की उपयोगिता बताते हुए कहते हैं कि यह कैसे ज्ञात होता है कि शब्द, अर्थ और उनका सम्बन्ध नित्य है? उत्तर देते हैं– लोक–व्यवहार से। क्योंकि लोक में उस उस अर्थ को लेकर शब्दों का प्रयोग करते चले जाते हैं। उन शब्दों के निर्माण में यत्न नहीं करना पड़ता। परन्तु जो पदार्थ साध्य होते है, उनके बनाने में यत्न कियाजाता है। जैसे– घड़े से काम करना चाहता हुआ मनुष्य कुम्हार के घर जाकर कहता है– 'घड़ा बनाओ, मैने इससे काम करना है'। परन्तु उस प्रकार शब्दों का प्रयोग करना चाहने वाला व्यक्ति वैयाकरण के घर जाकर नहीं कहता – 'शब्द बनाइए, मै उनका प्रयोग करुंगा'। झट ही अर्थ का (ध्यान में) रखकर शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं। यदि तर्हि लोक एषु प्रमाणं, किं शास्त्रेण क्रियते ?

।। लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः।।

लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रण धर्मनियमः क्रियते।। किमिदं धर्मनियम इति ? धर्माय नियमो धर्मनियमः, धर्मार्थो वा नियमो धर्मनियमः, धर्मप्रयोजनो वा नियमो धर्मनियमः।।

।। यथा लौकिकवैदिकेषु।।

प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः। यथा लोके वेदे चेति प्रयोक्तव्ये 'यथा लौकिकवैदिकेषु' इति प्रयुञ्जते।। अथवा युक्त एवत्र तद्धितार्थः। यथा लौकिकेषु वैदिकेषु च कृतान्तेषु। लोके तावद् 'अभक्ष्यो ग्राम्य कुक्कुटः, अभक्ष्यो ग्राम्यसूकर' इत्युच्यते। भक्ष्यं च नाम क्षुत्प्रतिघातार्थमुपादीयते। शक्यं चानेन श्वामांसादिभिरपि क्षुत्प्रतिहन्तुम्, तत्र नियमः क्रियते, इदं भक्ष्यमिदमभक्ष्यमिति।। तथा खेदात्स्त्रीषु प्रवृत्तिर्भवति। समानश्च खेदविगमो गम्यायां चागम्यायां च। तत्र नियमः क्रियते– इयं गम्येयमगम्येति।

वेदे खल्वपि – 'पयोव्रतो ब्राह्मणो, यवागूव्रतो राजन्यः, आमिक्षाव्रतो वैश्यः' इत्युच्यते। व्रतं च नामाभ्यवहारार्थमुपादीयते। शक्यं चानेन शालिमांसादीन्यपि व्रतयितुम्। तत्र नियमः क्रियते।। तथा 'बैल्वः खादिरो वा यूपः स्यात्' इत्युच्यते। यूपश्च नाम पश्वनुबन्धार्थमुपादीयते। शक्यं चानेन यत्किंचिदेव काष्ठमुछित्या–

ऽनुच्छित्य वा पशुरनुबन्धुम्। तत्र नियमः क्रियते। तथा– 'अग्नौ कपालान्य–धिश्रित्याऽभिमन्त्रयते– 'भृगूणामङ्गिरसां धर्मस्य तपसा तप्यध्वम्' इति। अन्तरेणापि मन्त्रमग्निर्दहनकर्मा कपालानि संतापयति। तत्र च नियमः क्रियते– एवं क्रियमाणमभ्युदयकारि भवतीति।। एवमिहापि समानायामवर्थाऽवगतौ शब्देन चाऽपशब्देन च धर्मनियमः क्रियते– शब्देनैवार्थोऽभिधेयो नापशब्देनेति। एवं क्रियमाणमभ्युदयकारि भवतीति।

यदि लोकव्यवहार ही इन (शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध) में प्रमाण है, तो शास्त्र का क्या काम है ? लोकव्यवहार से अर्थ के लिए शब्द का प्रयोग सिद्ध होने पर (भी) शास्त्र से धर्म अर्थात् औचित्य का नियमन होता है।

यह धर्म नियम क्या है? धर्म के लिए नियम, धर्म–रुपी नियम अथवा धर्म से प्रयोजित नियम धर्म–नियम कहलाता है। जैसे लोक और वेद में। दक्षिणप्रदेशवासी तद्धित के प्रयोग में अधिक रुचि रखते हैं 'लोके वेदे' कहने के स्थान पर 'लौकिक–वैदिकेषु' ऐसा प्रयोग कर दिया है। अथवा यहां पर तद्धित का प्रयोग उचित ही है। असका अभिप्राय है– जैसे लोक के और वेद के दृष्टांतों में। जैसे लोकमें कहा जाता है– 'गांव का मुर्गा अभक्ष्य है, गांव का सूअर अभक्ष्य है'। भोजन तो भूख मिटाने के लिए लिया जाता है। कुत्ते के मांस से भी भूख मिटाई जा सकती है। पर इस विषय में नियमन (नियन्त्रण) किया जाता है– यह खाना चाहिए और यह नहीं। इस प्रकार राग के कारण स्त्री–समागम किया जाता है। समागम के लिए उचित अथवा अनुचित स्त्री राग की तृप्ति तो एक–सी है। पर इस विषय में नियम बनाया जाता है– यह समागम के योग्य है और यह अयोग्य।

वेद में भी– '(यज्ञ के अवसर पर) ब्राह्मण दूध का आहार करे, क्षत्रिय लप्सी का और वैश्य पनीर का' –ऐसा कहा गया है। आहार तो खाने के लिए ही ग्रहण किया जाता है। मांसौदन का आहार भी लिया जा सकता है। पर इस बारे में नियम बना दिया जाता है। उसी प्रकार, विधान किया जाता है कि 'यूप विल्व लकड़ी का बना हो, या खदिर लकड़ी का'। यूप तो पशु को बांधने के लिये ही होता है। जिस किसी लकड़ी का छीलकर, या छीले बिना ही, उससे पशु बांधा जा सकता है। पर उस विषय में नियम कर दिया जाता है। उसी प्रकार, 'आग पर हांडियों को रखकर मन्त्र का उच्चारण करता है – ''भृगु और अङ्गिरस् ग्रोत्र के ऋषियों के तेज की गरमी से तपो''।' जलाने की क्रिया करने वाला अग्नि, मन्त्रों के बिना भी, हांडियों को गरम कर देता है। फिर भी उस विषय में नियम बनाया जाता है – 'इस प्रकार से किया जाना लाभकारी होता है'। इसी प्रकार यहां पर भी शब्द के द्वारा या अपशब्द के द्वारा एक समान अर्थबोध होन पर भी धर्मनियम किया जाता है कि शब्द से ही अपने अभिप्राय को कहना चाहिए, अपशब्द से नहीं। इस प्रकार से किया जाना श्रेयस्कर होता है।

।। अस्त्यप्रयुक्ता।।

सन्ति वै शब्दा अप्रयुक्ताः। तद्यथा– ऊष, तेर, चक्र, पेचेति। किमतो यत्सन्त्यप्रयुक्ताः? प्रयाेगाद्धि भवान् शब्दानां साधुत्वमध्यवस्यति। ये इदानीम प्रयुक्ता, नामी साधवः स्युः।।

इदं तावद्विप्रतिषिद्धम्, यदुच्यते –'सन्ति वै शब्दा अप्रयुक्ता' इति। यदि सन्ति, नाऽप्रयुक्ताः। अथाऽप्रयुक्ता, न सन्ति। सन्ति चाऽप्रयुक्ताचेति विप्रतिषिद्धम्। प्रयुञ्जान एव खलु भवानाह– 'सन्ति शब्दा अप्रयुक्ता' इति। कश्चेदानीमन्यो भवज्जातीयकः पुरुषः शब्दानां प्रयोगे साधुः स्यात् ? नैतद्विप्रतिषिद्धम्। सन्तीति तावद् ब्रूमः, यदेतान्शास्त्रविदः शास्त्रेणाऽनुविदधते। अप्रयुक्ता इति ब्रूमः, यल्लोकेऽप्रयुक्ता इति। यदप्यच्यते–कश्चेदानीमन्यो भवज्जा– तीयकः पुरुषः शब्दानां प्रयोगे साधुः स्यादिति। न ब्रूमोऽस्मा– भिरप्रयुक्ता इति। किं तर्हि? लोकेऽप्रयुक्ता इति। ननु च भवानप्यभ्यन्तरो लोके। अभ्यनतरोऽहं लोके, नत्वहं लोकः ।।

अप्रयुक्त (शब्द भी) है। निश्चय ही (ऐसे) शब्द है जो प्रयोग में नहीं आते। सो जैसे – ऊष, तेर, चक्र, पेच इत्यादि। प्रश्न है कि इससे क्या हुआ यदि अप्रयुक्त शब्द भी है?

लोक में प्रयोग से ही आप शब्दों के शुद्ध होने का निश्चय करते हैं। अब जो शब्द अप्रयुक्त है वे सम्भवतः शुद्ध न हों। 'शब्द हैं और अप्रयुक्त है' यह कहना परस्पर विरोधी है। (शब्द) यदि हैं, तो अप्रयुक्त नहीं। और यदि अप्रयुक्त है, तो वे है ही नहीं। वे शब्द हैं भी और अप्रयुक्त भी है – यह परस्पर विरोधी बात है। शब्दों का प्रयोग करते हुए ही आपने कहा कि (ये) शब्द अप्रयुक्त हैं। इस समय आप जैसा और कौन पुरुष शब्दों को प्रयोग करने में कुशल होगा?

यह परस्पर विरोधी वचन नहीं। जब हम कहते हैं कि शब्द हैं, तो अभिप्राय है कि वैयाकरण अपने शास्त्र में इनकी व्याख्या करते है। इन्हे अप्रयुक्त कहने से हमारा अभिप्राय है कि लोक में इनका व्यवहार नहीं होता। यह कहना कि 'इस समय आप जैसा और कौन पुरुष शब्दों को प्रयोग करने में कुशल होगा' इसका उत्तर यह है कि हम यह तो नहीं कहते कि हमने इनका प्रयोग नहीं किया। तो (आप) क्या (कहते हैं)? क्या ये लोक में प्रयुक्त नहीं होते? फिर आप भी तो लोक के भीतर है। उत्तर देते हैं कि, में लाेक के भीतर भले हूं, पर लोक तो नहीं ।

।। अस्त्यप्रयुक्त इति चेन्नार्थे शब्दप्रयोगात्।।

अस्त्यप्रयुक्तः, इति चेत्। तन्न। किं कारणम् ? अर्थे शब्दप्रयोगात्। अर्थे शब्दाः प्रयुज्यन्ते। सन्ति चैषां शब्दानामर्थाः, येष्वर्थेषु प्रयुज्यन्ते।।

।। अप्रयोगः प्रयोगाऽन्यत्वात्।।

'अप्रयोगः खल्वप्येषां शब्दानां न्याय्यः। कुतः ? 'प्रयोगाऽ– न्यत्वात्'। यदेषां शब्दानामर्थेऽन्या–न्छब्दान् प्रयुञ्जते। तद्यथा उषेत्यस्य शब्दस्यार्थे 'क्व युयमुषिताः' तेरेत्यस्यार्थे – क्व यूयं तीर्णाः', चक्रेत्यस्यार्थे – 'क्व यूयं कृतवन्तः:। पेचेत्यस्यार्थे – 'क्व यूयं पक्ववन्त' इति।

।। अप्रयुक्ते दीर्घसत्रवत्।।

यद्यप्यप्रयुक्ताः, अवश्यं दीर्घसत्त्रवल्लक्षणेनाऽनुविधेयाः। तद्यथा दीर्घसत्त्राणि वार्षशतिकानि वार्षसहस्त्रिकाणि च। न चाऽद्यत्वे कश्चिदप्याहरति, केवलमृषिसंप्रदायो धर्म इति कृत्वा याज्ञिकाः शास्त्रेणानुविदधते।।

।। सर्वे देशान्तरे।।

सर्वे खल्वप्येते शब्दा देशान्तरेषु प्रयुज्यन्ते।। न चैवोपलभ्यन्ते।।

'शब्द अप्रयुक्त है', यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं क्योंकि अर्थ में शब्द का प्रयोग होता है। 'शब्द अप्रयुक्त है', यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं। इसमें क्या कारण ? अर्थ में शब्द का प्रयोग होने से। अर्थ में शब्द प्रयोग किए जाते है। इन शब्दों के अर्थ है जिनमें वे प्रयोग किए जाते है। इनके स्थान पर अन्य शब्दों का प्रयोग होने से, इन शब्दों का प्रयोग नहीं होता। इन शब्दों का प्रयुक्त न होना उचित है। क्यों ? अन्य शब्दों का प्रयोग होने से। क्योंकि इन शब्दों के अर्थ में दूसरे शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे– 'ऊष' शब्द के अर्थ में 'उषिता', 'क्व यूयमुषिता' 'तुम कहां रहे ?' 'तेर' के अर्थ में 'तीर्णाः' 'क्व यूयं तीर्णाः, 'तुम कहां तैरे ?' 'चक्र' के अर्थ में 'कृतवन्तः', 'क्व यूयं कृतवन्तः', 'तुमने कहां काम किया ? 'पेच' के अर्थ में 'पक्ववन्तः', 'क्व यूयं पक्ववन्तः, 'आपने कहां पकाया ?

आगे कहते हैं ''उपयुक्त शब्दों के विषय में, लम्बे यज्ञो की भांति।'' अर्थात् – यद्यपि (कुच्छ) शब्द अप्रयुक्त है, तो भी लंबे यज्ञों की भांति उनका अन्वाख्यान शास्त्र द्वारा अवश्य करना चाहिए। जैसे, कुछ यज्ञ सौ वर्ष तक और (कुछ) हजार वर्ष तक चलने वाले होते हैं। पर आजकल उन्हें कोई नहीं करता, केवल ऋषिपरम्परा को धर्म मानकर याज्ञिक लोग शास्त्र से उनका अन्वाख्यान करते हैं।

आगे कहते हैं कि, ये सभी (अप्रयुक्त शब्द) दूसरे देशों में प्रयुक्त होते हैं। पर ऐसा पाया नहीं जाता। इसे स्पष्ट करते हैं–

उपलब्धौ यत्नः क्रियताम्। महान् हि शब्दस्य प्रयोगविषयः। सप्तद्वीपा वसुमती,, त्रयो लोकाः, चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः– एकशत–मध्वर्युशाखाः, सहस्रवर्त्मा सामवेदः, एकविंशतिधा बाह्वृच्यं, नवधाऽऽथर्वणो वेदः। वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषयः। एतावन्तं शब्दस्य

प्रयोगविषयमनुनिशम्य 'सन्त्यप्रयुक्ता' इति वचनं केवलं साहसमात्रमेव। एतस्मिं-श्चातिमहति शब्दस्य प्रयोगविषये ते ते शब्दास्तत्र तत्र नियतविषया दृश्यन्ते, तद्यथा – शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति, विकार एनमार्या भाषन्ते शव इति। हम्मतिः सुराष्ट्रेषु, रंहतिः प्राच्यमध्येषु, गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते। दातिर्लवनार्थे प्राच्येषु, दात्रमुदीच्येषु ।। ये चाप्येते भवतोऽप्रयुक्ता अभिमताः शब्दाः एतेषामपि प्रयोगो दृश्यते।

क्व ? वेदे। तद्यथा 'सप्तास्ये रेवती रेवदूष' 'यद्वो रेवती रेबत्यां तमूष', 'यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र' 'यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्' इति ।।

(तो उनके) पाने के लिए यत्न कीजिए। शब्द के प्रयोग का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। पृथिवी के सात महाद्वीप है, तीन लोक हैं, चार वेद हैं अङ्गों और उपनिषदों सहित। इनके भेद अर्थत् शाखाएं बहुत है, यजुर्वेद की एक सौ एक शाखाएं, सामवेद की एक हजार शाखाएं, ऋग्वेद के इक्कीस प्रकार और अथर्ववेद नौ प्रकार से। वाकोवाक्य अर्थात् प्रश्नोत्तर साहित्य, इतिहास, पुराण वैद्यक- इस प्रकार शब्द के प्रयोग का इतना विशाल क्षेत्र है। शब्द के प्रयोग के इतने बड़े क्षेत्र को जाने बिना यह कहना कि शब्द अप्रयुक्त हैं केवल साहस मात्र है। शब्द के इस अत्यन्त विशाल प्रयोग क्षेत्र में शब्द अपने-अपने निश्चित अर्थो में प्रयुक्त होते है। जैसे -गत्यर्थक 'शव्' धातु को क्रियारुप में कम्बोज लोग ही बोलते है। आर्य लोग इससे बने (कृदन्त रुप) 'शव' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'हम्म्' धातु सुराष्ट्र में, 'रंह्' धातु प्राच्य और मध्य देश में (प्रयुक्त होती है), आर्य लोग तो (इस अर्थ में) 'गम्' धातु का ही प्रयोग करते हैं। काटने अर्थ में 'दा' धातु को (क्रियारुप में) प्राच्य देश में और (कृदन्त रुप) 'दात्र' शब्द को उदीच्य देश में प्रयुक्त किया जाता है। और जिन भी शब्दों को आपने अप्रयुक्त माना है, इनका भी प्रयोग मिलता है। कहां पर ? वेद में । जैसे – 'सप्तास्ये रेवती रेवदूष', यद्वो रेवती रेवत्यां तमूष', 'यन्मे नरः **श्रृत्यं बह्म चक्र', यत्रा नश्चका जरसं तनूनाम्'।।**

साधुशब्दज्ञानपूर्वकप्रयोगस्य धर्मजनकता -किं पुनः शब्दस्य ज्ञाने धर्मः, आहोस्वित् प्रयोगे ? कश्चात्र विशेषः ?

।। ज्ञाने धर्म इति चेत्तथाऽधर्मः।।

ज्ञाने धर्म इति चेत्तथाऽधर्मोऽपि प्राप्नोति। यो हि शब्दाञ्जानाति, अपशब्दानप्यसौ जानाति। यथैव शब्दज्ञाने धर्मः, एवमपशब्दज्ञानेप्यधर्मः।। अथवा भूयानधर्मः प्राप्नोति। भूयांसो ह्यपशब्दाः, अल्पीयांसः शब्दाः। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभंशाः। तद्यथा गौरित्यस्य गावी गौणी गीता गोपोतलिकत्येवमा-दयोऽपभंशाः।।

।। आचारे नियमः।।

आचारे पुनर्ऋषिर्नियमं वेदयते 'तेऽसुरा हेलयो हेलय इति पुर्वन्तः परभूवुः', इति। अस्तु तर्हि प्रयोगे । प्रयोगे सर्वलोकस्य। यदि प्रयोगे धर्मः, सर्वो लोकोऽभ्युदयेन युज्येत। कश्चेदानीं भवतो मत्सरो, यदि सर्वो लोकोऽभुदयेन युज्येत? न खलु कश्चिन्मत्सरः, प्रयत्नानर्थक्यं तु भवति। फलवता च नाम प्रयत्नेन भवितव्यम्। न च प्रयत्नः फलाद् व्यतिरेच्यः। ननु च ये कृतप्रयत्नास्ते साधीयः शब्दान् प्रयोक्ष्यन्ते। त एव साधीयोऽ- भ्युदयेन योक्ष्यन्ते। व्यतिरेकोऽपि वै लक्ष्यते। दृश्यन्ते हि कृतप्रयत्नाश्चाऽप्रवीणाः, अकृतप्रयत्नाश्च प्रतीणाः। तत्र फलव्यति- रेकोऽपि स्यात्। एवं तर्हि - नापि ज्ञान एवं धर्मो, नापि प्रयोग एव। किं तर्हि ?

शब्दों के ज्ञानपूर्वक प्रयोग की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए प्रश्न करते हैं कि शब्दों के ज्ञान में धर्म है या उनके प्रयोग में ? किन्तु इन दोनों (पक्षों) में भेद क्या है? यदि ज्ञान में धर्म हो, तो वैसे अधर्म भी होगा।

यदि शब्दों के ज्ञान में धर्म होता है, तो उसी प्रकार अधर्म भी प्राप्त होता है। जो मनुष्य शब्दों को जानता है, वह अपशब्दों को भी जानता है। जिस प्रकार शब्दो के ज्ञान से धर्म होता है, उसी प्रकार अपशब्दों के ज्ञान में अधर्म भी होता है। अथवा अधर्म अधिक होता है, क्योंकि अपशब्द (अपेक्षाकृत) अधिक है, (शुद्ध) शब्द (अपेक्षाकृत) अल्पतर। एक-एक शब्द के बहुतेरे अपभ्रंश है। जैसे- 'गौ' इस शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका इत्यादि अपभ्रंश है।

तब कहते हैं कि आचार में नियम भी तो है।

ऋषि तो आचार अर्थात् प्रयोग में नियम भी बताता है- 'वेअसुर ('हेऽरयः, हेऽरयः' के स्थान पर) 'हेऽलयः, हेऽलयः' प्रयोग करते हुए पराजित हुए थे। कहते हैं कि अच्छा,तो प्रयोग में ही धर्म सही कम से कम प्रयोग के पक्ष में तो सब लोगों को धर्म होगा।

और यदि प्रयोग में धर्म मान लिया जाए तो सभी लोग अभ्युदय अर्थात् कल्याण से युक्त हो जाएंगे। तो इसमें आप को ईर्ष्या कैसी, यदि सभी लोग अभ्युदय से युक्त हो जाएं? उत्तर देते हैं कि मुझे कोई ईर्ष्या नहीं। पर व्याकरण पढ़कर शब्दज्ञान करने का प्रयत्न तो व्यर्थ हो जाता है। प्रयत्न को अवश्य फलवान् होना चाहिए। प्रयत्न को फल से पृथक तो नही किया जा सकता। अतः जो व्याकरण पढ़कर शब्दज्ञान करने का यत्न करेंगे, वे अधिक अच्छे ढंग से शब्दों का प्रयोग करेंगें, और वे ही अधिक अच्छे ढंग से अभ्युदय के भागी बनेंगे।

।। शास्त्र पूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देन।।

शास्त्रपूर्वकं यः शब्दान् प्रयुङ्क्ते, सोऽभ्युदयेन युज्यते। 'तत्तुल्यं वेदशब्देन'। वेदशब्दा अप्येवमभिवदन्ति- 'योऽग्निष्टोमेन यजते, य उ चैनमेव वेद'। 'योऽग्नि

नाचिकेतं चिनुते, य उ चैनमेवं वेद'। अपर आह्–'तत्तुल्यं वेदशब्देने' ति। यथा वेदशब्दा नियमपूर्वमधीताः फलवन्तो भवन्ति। एवं यः शास्त्रपूर्वकं शब्दान् प्रयुङ्क्ते सोऽभ्युदयेन युज्यत इति। अथवा पुनरस्तु – ज्ञान एव धर्म इति। ननु चोक्तं – ज्ञाने धर्म इति चेत्तथाऽधर्म इति। नैष दोषः। शब्दप्रमाणका वयम्। यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्। शब्दश्च शब्दज्ञाने धर्ममाह, नापशब्दज्ञानेऽधर्मम्। यच्च पुनरशि– ष्टाऽप्रतिषिद्धं, नैव तद्दोषाय भवति, नाभ्युदयाय। तद्यथा हिक्कितहसितकण्डूयितानि नैव दोषाय भवन्ति, नाभ्युदयाय। अथवाऽभ्युपाय एवाऽपशब्दज्ञानं शब्दज्ञाने। यो ह्यपशब्दाञ्जानाति शब्दानप्यसौ जानाति। तदेवं 'ज्ञाने धर्मः' इति ब्रुवतोऽर्थादापन्नं भवति। 'अपशब्दज्ञानपूर्वके शब्दज्ञाने धर्मः' इति। अथवा कूपखानकवदेतद् भविष्यति। तद्यथा कूपखानकः कूपं खनन्यद्यपि तदीयमृदा पांसुभिश्चावकीर्णे भवति। सोऽप्सु संजातासु तत एव तं गुणमासादयति, येन च स दोषो निर्हण्यते। भूयसा चाऽभ्युदयेन योगो भवति। एवमिहापि यद्यप्यपशब्द–ज्ञानेऽधर्मस्तथापि यस्त्वसौ शब्दज्ञाने धर्मस्तेन च स दोषो निर्घानिष्यते, भूयसा चाऽभ्युदयेन योगो भविष्यति।।

यदप्युच्यते– 'आचारे नियमः' इति। याज्ञे कर्मणि स नियमोऽन्यत्राऽनियमः। एवं हि श्रूयते–यर्वाणस्तर्वाणो नाम ऋषयो बभूवुः प्रत्यक्षधर्माणः परारज्ञा विदितवेदितव्या अधिगतयाथातथ्याः'। ते तत्रभवन्तो यद्वा नः तद्वा नः इति प्रयोक्तव्ये यर्वाणस्तर्वाण इति प्रयुञ्जते, याज्ञे पुनः कर्मणि नाऽपभाषन्ते। तैः पुनरसुरैर्याज्ञे कर्मण्यपभाषितम्। ततस्ते पराभूताः ।।

पुनः शंका करते हैं कि व्यवहार में इसके विपरीत भी देखा जाता है, कि व्याकरण में प्रयत्न करने पर भी कुछ लोग शब्द प्रयोग में कुशल नहीं होते, जब कि कुछ लोग व्याकरण में प्रयत्न किये बिना ही शब्द प्रयोग में कुशल होते हैं। शब्द प्रयोग में धर्म मानने के पक्ष में फल की प्राप्ति में भी विपरीतता होगी। शब्द ज्ञान के लिए प्रयत्न करने वाले को फल न मिलकर कुशल प्रयोग करने वाले को ही फल मिलेगा, चाहे उसने व्याकरण पढ़कर शब्द ज्ञान करने का यत्न न भी किया हो। तो ऐसी अवस्था में धर्म न केवल ज्ञान में और न ही केवल प्रयोग में मानना चाहिए । फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या मानना चाहिए? उत्तर देते हें कि –

शास्त्र–ज्ञान–पूर्वक प्रयोग में धर्म है, यह वेद के वचन के अनुकूल है। जो व्याकरण शास्त्र को जानकर शब्दों का प्रयोग करता है, वह कल्याण से युक्त होता है, यह बात वेद के वचन के अनुकूल है। वेद के शब्द भी यही कहते हैं– 'जो अग्निष्टोम यज्ञ करता है, और जो उसे इस प्रकार जानता है'। 'जो नाचिकेत अग्नि का चयन करता है, ओर जो उसे इस प्रकार जानता है।' अर्थात जानकर और समझकर प्रयोग करना ही फलदायि होता है।

कोई दूसरा कहता है – यह वेद के शब्दों के तुल्य है। जिस प्रकार वेद के शब्द नियमपूर्वक पढ़े जाने पर फल वाले होते है, उसी प्रकार जो

शास्त्र–ज्ञानपूर्वक शब्दों का प्रयोग करता है, वह कल्याण से युक्त होता है। अथवा, ज्ञान में ही धर्म होने दो।भी होता है यह तात्पर्य है?

किन्तु पहले कहा था कि यदि ज्ञान ही में धर्म होगा, तो उसी प्रकार अधर्म भी होगा। समाधान करते हैं कि यह कोई दोष नहीं। हम शब्द अर्थात् शास्त्रवचन को प्रमाण मानने वाले हैं। शब्द या शास्त्रवचन जो कहता है, वह हमारे लिए प्रमाण है। शास्त्र वचन तो शब्द के ज्ञान में धर्म बतलाता है, अपशब्द के ज्ञान में अधर्म नहीं कहता। और जिस कार्य का न विधान हो, न निषेध हो, उस कार्य के करने में न दोष होता हे, न कल्याण। जैसे– हिचकी, हंसी, और खुजली करने में न दोष है, न अभ्युदय।

अथवा, अपशब्दों का ज्ञान तो शब्दों के ज्ञान में साधन है। जो अपशब्दों को जानता है, वह शब्दों को भी जानता है। सो इस प्रकार, 'ज्ञान में धर्म है' ऐसा कहने वाला परोक्षरुप अर्थात् अर्थापत्ति से स्वीकार करता है कि अपशब्दों का ज्ञान होने पर शब्द ज्ञान होता है उसमें धर्म है।

अथवा, कूएँ खोदने वाले की भांति होता होगा कि जैसे कूएँ को खोदने वाला कूएँ का खोदते हुए यद्यपि मिट्टी–धूल से भर जाता है, पर पानी के निकल आने पर वह वहीं से ऐसा स्नान का गुण पा लेता है, जिससे वह मिट्टी–धूल का दोष नष्ट हो जाता है, अपितु अधिक अभ्युदय अर्थात् कल्याण के साथ उसका योग हो जाता है। इसी प्रकार यहां पर भी। यद्यपि अपशब्द के जानने में अधर्म होता है, तो भी शब्द ज्ञान में जो धर्म होता है, उससे वह दोष नष्ट हो जाएगा, अपितु अधिक अभ्युदय से योग होगा।

जो यह कहा था, 'आचार या प्रयोग में ही धर्म का नियम किया गया है'। सो यह नियम यज्ञकर्म के सम्बन्ध में है, अन्यत्र नहीं । ऐसा सुना जाता है– 'यवार्णः तर्वाणः नाम के ऋषि हो चुके हैं जो धर्म का साक्षात्कार करने वाले, परा और अपना विद्या को जानने वाले, ज्ञेय का ज्ञान रखने वाले और वास्तविकता को समझने वाले थे। वे पूज्य ऋषि 'यद्वा नः तद्वा नः' अर्थात् जितना कुछ हमारे लिए है, उतना ही हमारे लिए है, अधिक नहीं ऐसा बोलने के स्थान पर 'यर्वाणः तर्वाणः' ऐसा कह देते थे। पर यज्ञकर्म में अपशब्द अर्थात् अशुद्ध शब्द नहीं बोलते थे। परन्तु उन असुरों ने तो यज्ञकर्म में ही अशुद्ध शब्द (हेऽलयः, हेऽलयः) बोल दिया था, इसलिए वे परास्त हुए।

व्याकरण–स्वरुप–विचारः – अथ व्याकरणमित्यस्य शब्दस्य कः पदार्थः?

सूत्रे व्याकरणे षष्ठ्यर्थोऽनुपपन्नः – सूत्र व्याकरण षष्ठ्यर्थो नोपपद्यते – 'व्याकरणस्य सूत्रम्' इति। किं हि तदन्यत्सूत्राद् व्याकरणम् यस्यादः सूत्रं स्यात्?

शब्दाऽप्रतिपत्तिः– शब्दानां चाप्रतिपत्तिः प्राप्नोति। 'व्याकरण– च्छब्दान् प्रतिपद्यामहे' इति। नहि सूत्रत एव शब्दान् प्रतिपद्यन्ते। किं तर्हि? व्याख्यानतश्च।

ननु च तदेव सूत्रं विगृहीतं व्याख्यानं भवति। न केवलानि चर्चापदानि व्याख्यानम्–'वृद्धिः, आत्, ऐच्', इति। किं तर्हि? उदाहरणं प्रत्युदाहरणं वाक्याध्याहार इत्येतत्स मुदितं व्याख्यानं भवति। एवं तर्हि शब्दः।

शब्दे ल्युडर्थः। यदि शब्दो व्याकरणं ल्युडर्थो नोपपद्यतेव्या– क्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्। नहि शब्देन किंचिद् व्याक्रियते। केन तर्हि? सूत्रेण । भवे च तद्धितः। भवे च तद्धितो नोपपद्यते– 'व्याकरणे भवो योगो वैयाकरणः' इति। नहि शब्दे भवो योगः। क्व तर्हि? सूत्रे ।

महाभाष्यकार कहते हैं कि, शब्दों का ज्ञान भी संभव नहीं है।

और शब्दों का ज्ञान भी नहीं हो पाएगा। 'हम व्याकरण से शब्दों का ज्ञान करते है' ऐसा कहा जाता है क्योंकि केवल सूत्रों से ही शब्दों का ज्ञान नहीं होता। प्रश्न है तो किस से होाता है? कहते हैं, व्याख्यान से भी होता है। किन्तु उसी सूत्र का विग्रह अर्थात् पदच्छेद करने पर व्याख्यान बन जाता है। उत्तर देते हैं कि नहीं। केवल विभक्त–पद ही व्याख्यान नहीं बन जाते। जैसे–'बुद्धिः, आत्, एच्', इतना पदविभाग ही 'बुद्धिरादैच्' सूत्र की व्याख्या नही है। तो पुछते हैं कि व्याख्या क्या है ? तब कहते हैं कि उदाहरण, प्रत्युदाहरण, पिछले वाक्य से अनुवृत्ति, ये सब मिलकर व्याख्यान बनता है। तर्क है कि ऐसी अवस्था में शब्द को ही व्याकरण का अर्थ मान लो। तब समझाते हैं कि शब्द को ही व्याकरण का अर्थ मानने पर, ल्युट् प्रत्यय का अर्थ नहीं जुड़ता ।

व्याकरण वह है जिससे शब्दों का विश्लेषण किया जाता है। पर शब्द से तो कुछ विश्लेषण नहीं होता। तो किससे होता है? कहते हैं – सूत्र से ।

प्रोक्तादयश्च तद्धिताः। प्रोक्तादयश्च तद्धिता नोपपद्यन्ते। 'पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्',

आपिशलं, काशकृत्स्नमिति। नर्हिं पाणिनिना शब्दाः प्रोक्ताः। किं तर्हि ? सूत्रम्। किमर्थमिदमुभयमुच्यते 'भवे', 'प्रोक्तादयश्च तद्धिता' इति। न प्रोक्तादयश्च तद्धिता इत्येव भवेऽपि तद्धत– श्चोदितः स्यात् ? पुरस्तादिदमाचार्येण द्यष्टम् 'भवे च तद्धितः' इति, तदपि पठितमत्। न चेदानीमाचार्याः सूत्राणि कृत्वा निवर्तयन्ति। अयं तावददोषः, युदुच्यते– 'शब्दे ल्युडर्थः' इति।। नावश्यं करणाधिकरणयोरेव ल्युड् विधीयते। किं तर्हि ? अन्यष्वपि कारेकेषु – 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति। तद्यथा प्रस्कन्दनं प्रपतनमिति।।

अथवा शब्दैरपि शब्दा व्याक्रियन्ते। तद्यथा 'गौः' इत्युक्ते सर्वे सन्देहा निवर्तन्ते, नाश्वो, न गर्दभ इति। अयं तर्हि दोषः, 'भवे प्रोक्तादयश्च तद्धिताः' इति। एवं तर्हि – और 'उसमें विद्यमान' अर्थ वाला तद्धित प्रत्यय भी नहीं होगा। 'तत्र भवः' से होने वाला 'उसमें विद्यमान' अर्थ वाला तद्धित प्रत्यय संगत नहीं होगा। 'व्याकरण में होने वाला प्रयोग वैयाकरण कहलाता हैं।' शब्द

में तो प्रयोग होता नहीं। तो कहां होता है ? सूत्र में। और 'उसने कहा' अर्थ वाले तद्धित प्रत्यय भी नहीं होंगे।

'तेन प्रोक्तम्' से होने वाले तद्धित प्रत्यय भी संगत नहीं होंगे। 'जो पाणिनि ने कहा वह पाणिनीय', आपिशलि से प्रोक्त आपिशल, काशकृत्स्नि से प्रोक्त काशकृत्स्न, इत्यादि। पर पाणिनि ने शब्दों का प्रवचन नहीं किया। तो किसका किया है ? कहते हैं सूत्र का। प्रश्न है कि भवे च तद्धितः 'उसमें विद्यमान' अर्थ में तद्धित, और प्रोक्तादयश्च तद्धिता 'उसने कहा' आदि अर्थों में तद्धित, ये दोनों बातें पृथक्-पृथक् क्यों कही है ? 'उसने कहा आदि अर्थो में तद्धित' केवल इतना कहने से क्या 'विद्यमान अर्थ में भी तद्धित' नही समझाया जा सकता था ?

आचार्य की दृष्टि में पहले 'भवे च तद्धितः' आया और उसने वह कह दिया। उसके पश्चात् उसके ध्यान में आया 'प्रोक्तादयश्च तद्धिताः', तब उसे भी पढ़ दिया। आचार्य सूत्रों को बनाकर हटाते नहीं। पहले जो यह कहा था कि शब्द को व्याकरण मानने पर, ल्युट् प्रत्यय का अर्थ नहीं जुड़ता तो यह कोई दोष नहीं है। यह आवश्यक नही कि केवल करण और अधिकरण में ही ल्युट् प्रत्यय हो।

तो फिर किसमे होता है ? दूसरे भी कारकों में कृत्य और ल्युट् प्रत्यय बहुत बार देखे जाते हैं। सो जैसे- प्रस्कन्दन, प्रपतन। अथवा, शब्दों से भी शब्दों का व्याकरण या विवेचन हो जाता है। जैसे- 'गौः' शब्द कहने पर सब सन्देह दूर हो जाते हैं, कि यह घोड़ा नहीं, यह गधा नहीं। किन्तु यह दोष तो रहेगा ही, 'उसमें विद्यमान' और 'उसने कहा' आदि अर्थों में तद्धित प्रत्यय संगत नहीं होंगे। तो ऐसी अवस्था में -

।। लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम्।।

लक्ष्यं च लक्षणं चैतत्समुदितं व्याकरणं भवति। किं पुनर्लक्ष्यं ? किं वा लक्षणम् ? शब्दो लक्ष्यः, सूत्रं लक्षणम् । एवमप्ययं दोषः - समुदाये व्याकरणशब्दः प्रवृत्तोऽवयवे नोपपद्यते। सूत्राणि चाप्यधीयान इष्यते - वैयाकरण इति। नैष दोषः । समुदायेषु हि शब्दाः प्रवृत्ता अवयवेष्वपि वर्त्तन्ते। तद्यथा पूर्वे पञ्चालाः, उत्तरे पञ्चालाः, तैलं भुक्तम्, घृतं भुक्तम्, शुक्लो नीलः कपिलः कृष्ण इति। इवमयं समुदाये व्याकरणशब्दः प्रवृत्तोऽवयवेष्वपि वर्तते। अथवा पुनरस्तु सूत्रम्। ननु चोक्तम्- सूत्रे व्याकरणो षष्ठ्यर्थोऽनुपपन्न इति। नैष दोषः, व्यपदेशिवद्भावेन भविष्यति। यदप्युच्यते - 'शब्दाऽप्रतिपत्तिः' इति। नहि सूत्रत एव शब्दान् प्रतिपद्यन्ते। किं तर्हि ? व्याख्यानतश्चेति।। परिहृतमेतत्- तदेव सूत्रं विगृहीतं व्याख्यानं भवतीति। ननु चोक्तं- न केवलानि चर्चापदानि व्याख्यानम्- वृद्धिः, आत्, ऐजिति।। किं तर्हि ? उदाहरणं प्रत्युदाहरणं वाक्याध्याहार

इत्येतत्समुदितं व्याख्यानं भवति, इति। अविजानत एतदेवं भवति। सूत्रत एव हि शब्दान् प्रतिपद्यन्ते। आतश्च सूत्रत एव। यो ह्युत्सूत्रं कथयेन् नादो गृह्येत।।

अर्थात् लक्ष्य और लक्षण, दोनों ही, व्याकरण है। लक्ष्य और लक्षण, दोनों मिलकर, व्याकरण बनता है। अब प्रश्न होता है कि लक्ष्य क्या है और लक्षण क्या है? कहते हैं कि शब्द लक्ष्य है, और सूत्र लक्षण है। इस प्रकार भी यह दोष रहेगा, दोनों के समूह में प्रयुक्त होने वाला 'व्याकरण' शब्द अपने एक अंग के विषय में प्रयुक्त न हो पाएगा। केवल सूत्रों के पढ़ने वाले को भी तो वैयाकरण कहना अभिलषित है। तो यह कोई दोष नहीं। समूह अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्द, अपने अवयवों (=अंगों) में भी प्रयुक्त होते है। जैसे – पूर्व के पञ्चाल, उत्तर के पञ्चाल, तेल खा लिया, घी खा लिया, किसी वस्तु को सफेद, नीला, भूरा, काला इत्यादि कह देते हैं, जब कि तेल, घी और ये रंग अन्यत्र भी विद्यमान है, हमारे कथन का विषय तो उनका एकदेश मात्र होता है। इसी प्रकार यह 'व्याकरण' शब्द समुदाय में प्रयुक्त होता हुआ भी उसके अवयवों में भी प्रयुक्त होगा। अथवा, सूत्र ही व्याकरण है, ऐसा मान लिया जाए तो कहते हैं कि 'सूत्र को व्याकरण मानने पर षष्ठी विभक्ति का अर्थ संगत नहीं होगा'।

यह दोष नहीं है। व्यपदेशिवद्भाव से (अमुख्य में भी मुख्य के समान व्यवहार) हो जाएगा। 'बाग के पेड़', 'मेरा आत्मा', 'राहु का सिर' जैसे प्रयोगों की भाँति 'व्याकरण का सूत्र' प्रयोग भी अभेद में षष्ठी होने से सिद्ध हो सकेगा। और पहले जो यह कहा था कि 'शब्दों का ज्ञान नहीं हो पाएगा'। क्योंकि केवल सूत्रों से ही शब्दों का ज्ञान नहीं होता। तो किस से? व्याख्यान से भी। इसका परिहार कर दिया था– 'उसी सूत्र का विग्रह अर्थात् पदच्छेद करने पर व्याख्यान बन जाता है'। साथ ही यह भी कह दिया था कि केवल विभाग से कहे गए पद व्याख्यान नहीं बन जाते, जैसे – वृद्धिः, आत्, ऐच्। तो किससे ? उदाहरण, प्रत्युदाहरण और पिछले वाक्यों से अनुवृत्ति– ये सब मिलकर व्याख्यान बनता है। तथा विशेष में न जानने वालों के लिए ही ऐसा होता है। (वस्तुतः) सूत्र से ही शब्दों का प्रतिपादन होता है। अतः सूत्र से ही (शब्दों का ज्ञान होता है)। जो सूत्र का अतिक्रम करके कहेगा, उसका वचन नहीं माना जाएगा।

वर्णोपदेशपप्रयोजनानि – अथ किमर्थो वर्णानामुपदेशः ? वृत्तिसमवायार्थ उपदेशः। वृत्तिसमवायार्थो वर्णानामुपदेशः कर्तव्यः। किमिदं वृत्तिसमवायार्थ इति? वृत्तये समवायो वृत्तिसमवाय इति। वृत्त्यर्थो वा समवायो वृत्तिसमवायः। वृत्तिप्रयोजनो वा समवायो वृत्तिसमवायः। का पुनर्वृत्तिः? शास्त्रप्रवृत्तिः। अथ कः समवायः? वर्णानामानुपूर्व्येण संनिवेशः। अथ क उपदेशः ? उच्चारणम् । कुत एतत्? दिशिरुच्चारणक्रियः। उच्चार्य हि वर्णानाह 'उपदिष्टा इमे वर्णा' इति। अनुबन्धकरणार्थश्च। अनुबन्धकरणार्थश्च वर्णानामुपदेशः कर्तव्यः। अनुबन्धानास–

ङ्क्ष्यामीति। न ह्यनुपदिश्य वर्णाननुबन्धाः शक्या आसङ्क्तुम्। स एष वर्णानामु– पदेशो वृत्ति– समवायार्थश्चाऽनुबन्धकरणार्थश्च। वृत्तिसमवायश्चाऽनुबन्धकरणं च प्रत्याहारार्थम्। प्रत्याहारो वृत्त्यर्थः। इष्टबुद्ध्यर्थश्च। इष्टबुद्ध्यर्थश्च वर्णानामुपदेशः– 'इष्टान् वर्णान् भोत्स्यामहे' इति। न ह्यनुपदिश्य वर्णानिष्टा वर्णाः शक्या विज्ञातुम्।।

प्रत्याहार सूत्रों में वर्णों के उपदेश का प्रयोजन स्पष्ट करते हैं कि अब, वर्णों का उपदेश किस लिए किया गया है? वृत्ति (शाास्त्र में प्रवृत्ति) के निमित्त समवाय (क्रम विशेष से सन्निवेश) के लिए (वर्णों का) उपदेश अर्थात् कथन किया है। वृत्ति के निमित्त समवाय के लिए वर्णों का उपदेश करना ही चाहिए। यह वृत्ति–समवाय क्या है? वृत्ति के लिए समवाय, वृत्ति–उपकारक समवाय अथवा वृत्ति का प्रयोजन समवाय, वृत्तिसमवाय कहाता है। तो वृत्ति क्या है? वर्णों का क्रम से सन्निवेश। ही वृत्ति है। और उपदेश क्या है? उच्चारण या कथन। ही उपदेश है। यह कैसे? तो बताते हैं कि, दिश् धातु उच्चारण अर्थ में है। वर्णों का उच्चारण करके ही आचार्य कहता है कि, 'इन वर्णों का उपदेश कर दिया है'। अनुबन्ध करने के लिए भी वर्णों का उपदेश किया है।

अनुबन्ध लगाने के लिए भी प्रत्याहार सूत्रों द्वारा वर्णों का उपदेश करना चाहिए। जिससे मैं अनुबन्धों को लगाऊँगा। वर्णों का कथन किए बिना अनुबन्ध नहीं लगाए जा सकते। सो वर्णों का यह उपदेश वृत्ति–समवाय (=शास्त्र प्रवृत्ति के निमित्त वर्णों को क्रम से रखने) के लिए है और अनुबन्ध लगाने के लिए है। वृत्ति–समवाय और अनुबन्ध–करण प्रत्याहार बनाने के लिए है। प्रत्याहार शास्त्र–प्रवृत्ति के लिए है। अभीष्ट के बोधन के लिए भी वर्णों का उपदेश किया है। अभीष्ट के ज्ञान के लिए भी वर्णों का उपदेश किया गया है, इससे हम उपादेय वर्णों को जान पाएंगे। वर्णों का उपदेश किए बिना उपादेय वर्णों का ज्ञान संभव नहीं।

।।इष्टबुद्ध्यर्थश्चेति चेदुदात्ताऽनुदात्तस्वरिताऽनुनासिकदीर्घप्लुतानामप्युपदेशः।।

इष्टबुद्ध्यर्थश्चेति चेदुदात्ताऽनुदात्तस्वरिताऽनुनासिकदीर्घप्लुतानामप्युपदेशः कर्तव्यः। एवंगुणा अपि हि वर्णा इष्यन्ते।

।। आकृत्युपदेशात्सिद्धम्।।

आकृत्युपदेशात् सिद्धमेतत्। अवर्णाकृतिरुपदिष्टा सर्वम– वर्णकुलं ग्रहीष्यति। तथेवर्णाकृतिः । तथोवर्णाकृतिः।।

।।आकृत्यपदेशात्सिद्धमिति चेत् संवृतादीनां प्रतिषेधः।।

आकृत्यपदेशात्सिद्धमिति चेत् संवृतादीनां प्रतिषेघो वक्तव्यः।। के पुनः संवृतादयः ? संवृतः, कलो, ध्मातः, एणीकृतोऽम्बूकृतोऽ– र्द्धको, ग्रस्तो, निरस्तः, प्रगीतः, उपगीतः, क्ष्विण्णो, रोमश, इति।

अपर आह – 'ग्रस्तं निरस्तमविलम्बितं निर्हतमम्बूकृतं ध्मातमथो विकम्पितम्। संदष्टमेणीकृतमर्धकं द्रुतं विकीर्णमेताः स्वरदोषभावनाः' इति। अतोऽन्ये व्यञ्जनदोषाः।। नैष दोषः।

अर्थात् यदि अभीष्ट (वर्णों) के बोधन के लिए (वर्णोपदेश) है, तो उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, दीर्घ, प्लुत (वर्णों) का भी उपदेश होना चाहिए। यदि उपादेय (वर्णों) के ज्ञान के लिए (वर्णों का उपदेश किया गया है), तो उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, दीर्घ और प्लुत (वर्णों) का भी उपदेश करना चाहिए, (क्योंकि) इस प्रकार के वर्ण भी उपादेय हैं। जाति–परक उपदेश होने के कारण (यह स्वयं) सिद्ध है।

वर्णों का उपदेश जातिपरक होने के कारण यह (उदात्त आदि का उपदेश अपने आप) सिद्ध हो जाएगा। 'अ' वर्ण की जाति का उपदेश सभी प्रकार के 'अ' वर्णों के वर्ग को ग्रहण करा देगा। उसी प्रकार 'इ' वर्ण की जाति, उसी प्रकार 'उ' वर्ण की जाति क्रमशः सभी प्रकार के 'इ' वर्णों तथा 'उ' वर्णों का ग्रहण करा देगी। तो यदि जाति के उपदेश से सिद्ध है, तो संवृत आदि का प्रतिषेध करना होगा। अर्थात् यदि जाति के निर्देश कर देने से उदात्त आदि वर्णों का ग्रहण अपने आप सिद्ध है, तो संवृत आदि दोष–युक्त वर्ण भी अपने आप प्राप्त होंगे, तब उन संवृत आदि का निषेध करना होगा। संवृत आदि दोष कौन से हैं ? संवृत, कल, ध्मात, एणीकृत, अम्बूकृत, अर्द्धक, ग्रस्त, निरस्त, प्रगीत, उपगीत, क्ष्विण्ण, रोमश। कोई दूसरा कहता है– 'ग्रस्त, निरस्त, अविलम्बित, निर्हत, अम्बूकृत, ध्मात, विकम्पित, सन्दष्ट, एणीकृत, अर्धक, द्रुत, विकीर्ण– ये स्वर दोष हैं, इनके अतिरिक्त दूसरे दोष व्यञ्जनों के हैं तो उत्तर देते हैं कि – यह कोई दोष या आक्षेप नहीं है।

।। गर्गादिविदादिपाठात्संवृतादीनां निवृत्तिः।।

गर्गादिविदादिपाठात्संवृतादीनां निवृत्तिर्भविष्यति। अस्त्यन्द् गर्गादि– विदादिपाठे प्रयोजनम्। किं ? समुदायानां साधुत्वं यथा स्यादिति। एवं तर्ह्यष्टादशधा भिन्नां विवृत्तकलादिकावर्णस्य प्रत्यापत्तिं वक्ष्यामि।। सा तर्हि वक्तव्या। लिङ्गार्था तु प्रत्यापत्तिः। लिङ्गार्था सा तर्हि भवति। तत्तर्हि वक्तव्यम्। यद्यप्येतदुच्यते।अथ वैतर्हि अनेकमनुबन्धशतं नोच्चार्यमित्संज्ञा च न वक्तव्या, लोपश्च न वक्तव्यः। यदनुबन्धैः क्रियते तत्कलादिभिः करिष्यते। सिद्ध्यत्येवम्। अपाणिनीयं तु भवति। यथान्यासमेवास्तु। ननु चोक्तम्– 'आकृत्य– पदेशात्सिद्धमिति चेत्संवृतादीनां प्रतिषेधः' इति।।

अर्थात् गर्गादि, विदादि गणों के शुद्ध पाठ से संवृत आदि दोषों का निवारण अपने आप हो जाएगा। गर्गादि, विदादि के पाठ करने का प्रयोजन कुछ और है। वह क्या है? तो कहते हैं कि जिससे (इन) समुदायों या गणों में पढ़े शब्दों की साधुता जानी जा सके। तो फिर ऐसी अवस्था में, कल आदि दोषों से रहित, अवर्ण के अठारह प्रकारों की प्रत्यापत्ति अर्थात् पुनःस्वरुप प्राप्ति कर दूँगा। तो उसे कहना पड़ेगा जिससे गौरव अर्थात् विस्तार का दोष होगा। कहते हैं कि प्रत्यापत्ति तो लिङ्गार्थ है। वह प्रत्यापत्ति लिङ्गों अर्थात् चिह्नों का प्रयोजन भी पूरा कर देगी। फिर समस्या है कि उसे कहना तो पडेगा ही जिससे गौरव दोष होगा। यदि यह कह दिया जाय, तो अनेक सैकड़ों अनुबन्ध नहीं कहने पडेंगे, इत्संज्ञा नहीं कहनी पड़ेगी, और लोप भी नहीं कहना पड़ेगा। जो काम अनुबन्धों से होता है, वह कल आदि (दोषों) से कर लिया जाएगा। किन्तु इस प्रकार से काम तो चल जाएगा, परन्तु पाणिनि के विपरीत होगा। तो जैसा कहा है वैसा ही रहने दो तो कहते हैं कि– 'यदि जाति परक उपदेश होने से (उदात्त आदि वर्णों का ग्रहण अपने आप) सिद्ध है, तो संवृत आदि दोषों का निषेध करना होगा'।

परिहृतमेतत्, गर्गादिविदापाठात् संवृतादीनां निवृत्ति– र्भविष्यति–इति। ननु चान्यद् गर्गादि– विदादिपाठे प्रयोजनमुक्तम्। किम्? समुदायानां साधुत्वं यथा स्यादिति। एवं तर्हयुभय– मनेन क्रियते–पाठश्चैव विशेष्यते, कलादयश्च निर्वर्त्यन्ते। कथं पुररेकेन यत्नेनोभयं लभ्यम्? लभ्यमित्याह। कथम्? द्विगता अपि हेतवो भवन्ति। तद्यथा – 'आम्राश्च सिक्ताः, पितरश्च प्रीणिताः' इति। तथा वाक्यानि द्विष्ठानि भवन्ति– श्वेतो धावति, अलम्बुसानां यातेति। अथवा इदं तावदयं प्रष्टव्यः, क्वेमे संवृत्तादयः श्रूयेरन्निति? आगमेषु । आगमाः शुद्धाः पठ्यन्ते। विकारेषु तर्हि। विकारा अपि शुद्धाः पठ्यन्ते।।

उसी प्रकरण को स्पष्ट करते हैं कि उसका परिहार कर दिया था 'गर्गादि, विदादि (गणों) के पाठ से संवृत आदि (दोषों) का निषेध हो जाएगा'। फिर कहते हैं कि – गर्गादि, विदादि के पाठ का प्रयोजन तो कुछ और है। वह क्या? तो कहते हैं कि जिससे इन गणों की साधुता बताई जा सके। तो इस अवस्था में इस (गर्गादि–विदादि) पाठ से दोनों काम होंगे इनका पाठ भी विशेषित होगा जिससे इन शब्द विशेषों से ही कार्य विशेष होंगे, अन्यत्र नहीं, और कल आदि दोषों का भी निवारण होगा। प्रश्न है कि एक यत्न से दोनों लाभ कैसे सम्भव है? आचार्य कहते हैं संभव है। कैसे? कुछ कारण दो कार्यों को प्राप्त कराने वाले भी होते हैं जैसे – 'आम भी सींचे गए और पूर्वज भी प्रसन्न कर लिये'। इसी प्रकार वाक्य भी द्व्यर्थक होते हैं – 'श्वेतो धावति' (1.सफेद दौड़ता है, 2. श्वा इतो धावति = कुत्ता यहां से दौड़ता है)। 'अलम्बुसानां याता' (1.वह अलम्बुस देश को जाने वाला है, 2. बुसानां याता अलम्= भूसे को प्राप्त करने वाला समर्थ है)। अथवा, इससे यह पूछना चाहिए, ये संवृत आदि दोष कहाँ

सुनाई पड़ेगें ? आगमों में। तो उत्तर है आगम शुद्ध पढ़े गए हैं। तो विकारों में। नहीं विकार (आदेश) भी शुद्ध पढ़े हैं।

प्रत्ययेषु तर्हि।। प्रत्यया अपि शुद्धाः पठ्यन्ते।। धातुषु तर्हि।। धातवोऽपि शुद्धाः पठ्यन्ते।। प्रातिपदिकेषु तर्हि। प्राति- पदिकान्यपि शुद्धानि पठ्यन्ते। यानि तर्ह्यग्रहणानि प्रातिपदिकानि।। एतेषामपि स्वरवर्णानुपूर्वीज्ञानार्थ उपदेशः कर्त्तव्यः। शशः षषः इति मा भूत्। पलाशः पलाष इति मा भूत। मञ्चको मञ्चक इति मा भूत।

आगमाश्च विकाराश्च प्रत्ययाः सह धातुभिः।

उच्चार्यन्ते ततस्तेषु नेमे प्राप्ताः कलादयः।। 1।।

।। इति प्रथमं पस्पशाह्निकम् ।।

पूर्व सन्दर्भ में ही प्रश्न करते हैं कि संवृत्र आदि दोष क्या प्रत्ययों में सुनाई देंगें ? तो उत्त्र देते हैं कि प्रत्ययों को भी शुद्ध पढ़ गया है। तो धातुओं में। नहीं धातु भी शुद्ध पढ़े हैं। तो प्रातिपदिकों में। उत्तर है कि प्रातिपदिक (मूल नामपद) भी शुद्ध पढ़े गए हैं। और जिन प्रातिपदिकों का ग्रहण ही नहीं किया गया (नाम ही नहीं लिया गया), उनके भी स्वर-व्यञ्जनों की आनुपूर्वी (क्रम) को जानने के लिए उनका उपदेश करना चाहिए, जिससे 'शश' (खरगोश) को 'षष' (निरर्थक) न बन जाए। 'मञ्चक' (ऊँचा आसन) के स्थान पर 'मञ्जक' (निरर्थक) न पढ़ा जाए। आगम, आदेश, प्रत्यय, धातुओं सहित, (शुद्ध हो) पढ़ दिए गए हैं, अतः इनमें कल आदि दोषों के प्राप्त होन का प्रसंग नहीं।

।। प्रथम पस्पशाह्निक समाप्त।।

4.4 महत्वपूर्ण प्रश्न

प्र.1 पातञ्जल महाभाष्य के अनुसार शब्द की परिभाषा दीजिये।

उत्तर -'गौरित्यत्र कः शब्दः?' इस प्रश्न के उत्तर में 'शब्द' को परिभाषित करते हुए आचार्य पतञ्जलि लिखते हैं-''येनाच्चारितेन सास्ना-लांगूल-ककुद-खुर-विषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्दः।।'' अर्थात् जिसके उच्चारित किये जाने पर गलकम्बल, पूँछ, ककुद, खुर और सींगवाले पशु व्यक्ति का ज्ञान होता है, वह 'शब्द' है। अथवा लोक में व्यवहार करने वालों में पदार्थ

के बोधकरुप से प्रसिद्ध वर्णरुप, जो ध्वनि–समुदाय है, वही शब्द है। उदाहरणार्थ – जो वर्णरुप ध्वनि का उच्चारण करने वाला होता है, उससे यह कहा जाता है कि 'जिस ध्वनिरुप शब्द का उच्चारण तुम कर रहे हो, उसे करते ही रहो'। 'शब्द' मत करो'। 'यह बालक बारम्बार शब्द का उच्चारण किया करता है'। इस प्रकार ध्वनि अर्थात् वर्णोच्चारण ही 'शब्द' है – ''अथवा, प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द इत्युच्यते। तद्यथा शब्दं कुरु, मा शब्दं कार्षीः, शब्दकारी अयं माणवकः इति ध्वनिं कुर्वन्नेवमुच्यते। तस्माद् ध्वनिः शब्दः ।।''

ध्यातव्य है कि ककार, खकार इत्यादि वर्णरुप ध्वनि स्फोट की अभिव्यक्ति कराती है। स्वयं इसका कोई अर्थ नहीं होता हैं अतः वैयाकरणों के मत में वास्तविक शब्द 'स्फोट' ही माना गया है।

प्र.2 पातञ्जल महाभाष्य के अनुसार शब्द एवं अर्थ का सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये।

उत्तर –शब्द, अर्थ और उनके पारस्परिक सम्बन्ध में ''सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'' इस वार्तिक की व्याख्या करते हुए भाष्यकार पतञ्जलि कहते हैं कि शब्द और अर्थ का परस्पर जो सम्बन्ध है, वह सिद्ध है। सिद्ध शब्द पर्यायरुप से नित्य अर्थ का वाचक है– ''नित्यपर्यायवाची सिद्धशब्दः'' क्योंकि यह सिद्ध शब्द लोहार की निहाई (कूटस्थ) के समान अविचल पदार्थों के बारे में प्रयुक्त होता है। जैसे स्वर्ग सिद्ध है, पृथिवी सिद्ध है, आकाश सिद्ध है। ध्यातव्य है कि संग्रह आदि ग्रन्थों में वृद्धों के व्यवहार से ही पदों, अर्थों और उनके सम्बन्धों की नित्यता मानी गई है। अतः विशिष्ट विवरण रुप व्याख्यानों से 'सिद्ध' शब्द से 'नित्य' अर्थ का ही ग्रहण होता है । 'जाति' और 'व्यक्ति' इन दोनों में से किसे पद का अर्थ मान करके 'शब्द', 'अर्थ' और इन दोनों के सम्बन्ध की नित्यता स्वीकार की जाय? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान भाष्यकार कहते हैं कि –आकृति अर्थात् जाति को शब्द (पद) का अर्थ मानकर शब्द, अर्थ, और दोनों के सम्बन्ध की नित्यता स्वीकार की जाय, क्योंकि आकृति (जाति) नित्य रहती है, जबकि व्यक्ति (द्रव्य) अनित्य होता है।

नित्यता के सम्बन्ध में यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि 'नित्य' का लक्षण यही नहीं है कि जो ध्रुव अर्थात् अयोधन के समान सदा स्थित

रहने वाला, रुपान्तरापत्तिरहित हो, जो विनाश और परिणामरुप विकारों से रहित हो, जो उत्पन्न न हो, जो बढ़े न और नष्ट भी न हो, वही नित्य है, अपितु वह भी नित्य कहा जाता है, जिसके नष्ट होने पर भी उसमें रहने वाले तत्व (धर्म) का नाश नहीं होता है। जैसे 'घट' में रहने वाला 'घटत्व' धर्म ही 'तत्व' है। अवयव संस्थानरुप आकृति के नष्ट होने पर भी उससे व्यंग्य जाति–रुप जो धर्म है, वह नष्ट नहीं होता है, ऐसा लोकव्यवहार में देखा जाता है क्योंकि लोक में अर्थ को बुद्धि का विषय बना करके ही प्रयोग करने वाले शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे इन शब्दों की निष्पत्ति के निमित्त कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते हैं।

प्र.3 व्याकरण–अध्ययन के प्रयोजन को स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर –''प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते'' इस न्याय के अनुसार बिना किसी प्रयोजन के कोई मन्दबुद्धि (मूर्ख) व्यक्ति भी किसी कार्य में संलग्न नहीं होता है। तो व्याकरण शास्त्राध्ययन जैसा कष्टसाध्य कार्य निष्प्रयोजन नहीं हो सकता और यदि इसका कोई प्रयोजन है, तो वह क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए महाभाष्यकार आचार्य पतञ्जलि जी लिखते हैं – ''रक्षोहागम–लध्वसन्देहाः प्रयोजनम्''।। अर्थात् रक्षा ऊह, आगम, लघु और असन्देह का तात्पर्य वेदों की रक्षा, विभाक्तियों के विपरिणाम, आगम, सुगमता और संशयराहित्य, ये पाँच व्याकरणशास्त्र के अध्ययन के मुख्य प्रयोजन हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है –

(क) रक्षा – व्याकरणशास्त्र के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य वेदों की रक्षा है, इस विषय में भाष्यकार पतञ्जलि ने कहा है, वेदों की रक्षा के लिये व्याकरण पढ़ना चाहिए, क्योंकि लोप, आगम और वर्णविकार को जानने वाला ही वेदों की रक्षा कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्याकरण के नियमानुसार वर्णलोपादि के ज्ञान के बिना शास्त्रों के आकर स्वरुप वेदों का परिपालन नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, आचार्य कात्यायन और पतञ्जलि का मत है कि व्याकरणज्ञान के अभाव में वैदिक मन्त्रों के उच्चारण में विकृति आ जाएगी। निष्कर्ष यह है कि व्याकरण पुरुषार्थ का साधक उपाय है, क्योंकि वेदार्थज्ञान, कर्मानुष्ठानजनित एवं उपनिषदजनित सुख, ये तीनों वस्तुतः

व्याकरणाध्ययन के फल ही हैं। अतः वेदों की रक्षा का प्रधान भार वैयाकरणों के ही ऊपर है।

(ख) ऊह – 'ऊह' का अर्थ होता है, तर्क–वितर्क, अर्थात् नए पदों की कल्पना। मीमांसकों का मन्तव्य है कि यह विषय मीमांसा–शास्त्र का है। इस परिप्रेक्ष्य में भाष्यकार पतञ्जलि का मत है कि वेदों में जो मन्त्र कथित हैं, वे सब लिंगों एवं विभक्तियों में नहीं है। अतः उन मन्त्रों में यज्ञ में अपेक्षित रुप से लिंग और विभक्ति का व्यवहार करना चाहिए और यह दुष्कर कार्य वैयाकरणों के द्वारा ही सम्भव है। अतः व्याकरण का अध्ययन अवश्य करना चाहिए ।

(ग) आगम – व्याकरण के अध्ययन के लिए स्वयं श्रुति ही प्रमाणभूत है। भगवती श्रुति कहती है ''ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च''।। अर्थात् ब्राह्मण (द्विज) का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह निष्कारणधर्म का आचरण तथा षड्ङ्ग वेदों का अध्ययन करे। वेद के इन षड्ङ्गों में 'व्याकरण' ही मुख्य है और मुख्य–विषय में किया गया प्रयत्न विशेष फलदायी होता है। अतः श्रुति (आगम) प्रामाण्य को ध्यान में रखते हुए व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए ।

(घ) लघु – 'लघुता' के लिए व्याकरण का पठन–पाठन अत्यन्त आवश्यक है। संस्कृत–भाषा के प्रत्येक शुद्ध शब्द का यदि हम अध्ययन करना चाहें, तो इस लघु जीवन की बात ही क्या, अनेक जीवन व्यतीत हो जाए, परन्तु इस शब्दमहार्णव तक हम नहीं पहुँच सकते। इस विषय में स्वयं श्रुति कहती है कि 'देवगुरु बृहस्पति ने इन्द्र को एक सहस्र दिव्यवर्ष–पर्यन्त पढ़ाया, फिर भी विद्या का अन्त नहीं हुआ'। व्याकरण ही वह लघु उपाय है, जिसका आश्रय लेकर हम अपने मनोरथ को पूर्ण कर सकते हैं। व्याकरण का अध्ययन समस्त शास्त्रों की वह कुंजी है, जिससे सरलतापूर्वक उनके रहस्यों का उद्घाटन सम्भव है। अतः शास्त्रीय लघुता– सम्पादन भी व्याकरण का प्रयोजन है।

(ङ) असन्देह – वैदिक शब्दों के विषय में उत्पन्न 'सन्देह' का निराकरण व्याकरण ही कर सकता है। ऐसे अनेकशः समासयुक्त पद मिलते हैं, जिसमें अनेक प्रकार के समासों की सम्भावना हो सकती है। जैसे 'स्थूलपृषतीम्' में

बहुब्रीहिसमास होगा, या तत्पुरुषसमास ? यही सन्देह का स्थान है। इसका निर्णय स्वरों की सहायता से व्याकरण ही कर सकता है। यदि यह पद अन्तोदात्त है, तो कर्मधारय तत्पुरुष होगा और यदि यह पूर्वपद प्रकृति स्वर है, तो बहुब्रीहि होगा। अतः अर्थ–निर्णय की दृष्टि से व्याकरण का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। जैसा कि गहा गया है –

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत् ।।

अर्थात्, हे पुत्र! यद्यपि तुमने अनेक शास्त्रों को अध्ययन कर लिया है, फिर भी व्याकरणशास्त्र को अवश्य पढ़ो, जिससे तुम्हें शब्दों का यथार्थ ज्ञान हो सके। उपर्युक्त पञ्च प्रधान प्रयोजनों के अतिरिक्त भाष्यकार पतञ्जलि ने दुष्टशब्द–निवारण, अर्थज्ञान, धर्मलाभ, नामकरण, अपभाषण– निवृत्ति इत्यादि तेरह अन्य प्रयोजनों का भी उल्लेख किया है। इन सबका सम्मिलित प्रयोजन म्लेच्छता–निवारण है, जिससे अपशब्द– भाषण से बचा जा सके। इस विषय में शतपथब्राह्मण की भी सहमति प्राप्त है– **''एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति''।।**

अर्थात् एक शब्द का भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके, यदि शास्त्रानुसार उसका प्रयोग किया जाय, तो स्वर्गलोक में और इस लोक में दोनों जगह सफलता की प्राप्ति सुनिश्चित होती है।

प्र.4 व्याकरण की परिभाषा स्पष्ट कीजिये।

उत्तर –'व्याकरण' इस पद का अर्थ होता है ? इस प्रश्न के उत्तर में 'लक्ष्यलक्षणे व्याकरणम्' इस वार्तिक की व्याख्या करते हुए भाष्यकार पतञ्लि जी लिखते हैं–''लक्ष्यं च लक्षणं चैतत्समुदितं व्याकरणं भवति''।। अर्थात् 'लक्ष्य' और 'लक्षण' दोनों का समुदाय 'व्याकरण' है। ध्यातत्व है कि यहाँ पर शब्द 'लक्ष्य' है तथा सूत्र 'लक्षण' है– '' शब्दो लक्ष्यः सूत्रं लक्षणम्''।।

'व्याकरण' प्रकृति और प्रत्यय के उपदेशपूर्वक पदों के स्वरुप तथा उसके अर्थनिर्णय के लिए प्रयुक्त होता है। 'व्याकरण' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है, पदों की मीमांसा करने वाला शास्त्र–''व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्''।। व्याकरण को वेद–पुरुष का मुख माना जाता है– ''मुखं व्याकरणं स्मृतम्'।। अर्थात् जिस प्रकार मुख के बिना भोजन आदि के न

करने से शरीर की पुष्टि असम्भव है, उसी प्रकार व्याकरण के बिना वेद–पुरुष के शरीर की रक्षा तथा स्थिति असम्भाव्य है।

प्र.5 महाभाष्यकार ने साधु शब्द के प्रयोग का क्या परिणाम बताया है?

उत्तर– ''एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति'।। अर्थात् एक भी साधु शब्द का अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त करके यदि शास्त्रानुसार उसका प्रयोग किया जाय, तो वह इस लोक में और परलोक में सफलता का कारण बनता है। 'साधु' शब्दों के प्रयोग से पग–पग पर अनेकशः लाभ मिलते रहते हैं, इनमें से कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

(क) म्लेच्छता–निवारण – 'साधु' शब्दों के प्रयोग से म्लेच्छता की निवृत्ति होती है। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण है – ''तेऽसुरा हेलयो हेलय इति कुर्वन्तः पराबभूवुः। तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छितवै नापभाषितवै, म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः। म्लेच्छो मा भूमेत्यध्येयं व्याकरणम्''।। अर्थात् एक बार प्राचीनकाल में दैत्यों ने यज्ञस्थल में ''हे अरयः ! हे अरयः'' के बदले असाधु शब्द ''हेलयः हेलयः'' का प्रयोग किया और परिणामतः पराभव को प्राप्त हुए। अतः ब्राह्मण को म्लेच्छन (अपशब्दभाषण) नहीं करना चाहिए। यह अपशब्द ही म्लेच्छरुप से प्रसिद्ध है। हम साधु शब्द के प्रयोक्ता होवें, इस निमित्त व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है।

(ख) अशुभफल–निवृत्ति – 'साधु' शब्दों का प्रयोग करके अनर्थों से बचा जा सकता है, क्योंकि स्वरदोष अथवा वर्णदोष से दूषित प्रयोग में लाया गया असाधुशब्द, अनुकूल फल (अर्थ) का प्रतिपादन नहीं करता है, अपितु वह असाधुशब्द ही वाणीरुपी वज्र बनकर प्रयोक्ता (यजमान) को ही नष्ट कर डालता है, जैसे– ''स्वाहेन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्व'' इस मन्त्र के असाधुप्रयोग के कारण इस मन्त्र का प्रयोक्ता यजमान स्वयं विनष्ट हो गया –

'' दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानो हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात् ।।

(ग) अर्थज्ञान – वैदिक मन्त्रों के अर्थ समझने के लिए व्याकरण का जानना आवश्यक है, क्योंकि व्याकरणज्ञान के अभाव में साधु–शब्दों का प्रयोग सम्भव नहीं है।

(घ) धर्मलाभ – शब्दों का व्यवहार करते समय, जो कुशल व्यक्ति, साधु शब्दों का प्रयोग करता है, वह विद्वान व्यक्ति स्वर्ग में अनन्त उत्कर्ष को प्राप्त करता है, किन्तु अपशब्दों का प्रयोग करने से वह अनेकविध पापों का भाजन बनता है–

''यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले ।
सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र बाग्योगविद् तुष्यति चापशब्दैः ।।''

(ङ) नामकरण – गृह्यसूत्रकारों का कथन है कि उत्पन्न हुए जातक का नामकरण 'साधु' हो, इसके लिये आवश्यक है कि उसे कृदन्त होना चाहिए, तद्धितान्त नहीं। नाम का पहला व्यंजन घोष होना चाहिए, मध्य का व्यंजन अन्तस्थ होना चाहिए तथा नाम का प्रारम्भ वृद्धिसंज्ञक (आ, ऐ, औ) अक्षरों से नहीं होना चाहिए। इस सूक्ष्म तथ्य का ज्ञान व्याकरणज्ञान से ही सम्भव है। अतः साधुशब्दप्रयोग 'नामकरण' योग्यता को प्रदर्शित करता है।

(च) मूर्खता–निवारण – साधु शब्दों के प्रयोग से व्यक्ति मूर्ख नहीं अपितु विद्वान् समझा जाने लगता है। जो लोग इन साधु शब्दों को प्रयोग नहीं जानते किंवा नहीं करते वे मूर्ख समझे जाते हैं, जैसे – प्रत्यभिवादन में नामों को प्लुत करके उच्चरित न करना, पुरुषों, स्त्रियों अथवा प्रवासियों के विषय में यथानिर्दिष्ट साधु उच्चारण न करना । यदि साधु शब्दों का प्रयोग किया जाय, तो इस प्रकार की मूर्खता से बचा जा सकता है–

''अविद्वांसः प्रत्यभिवादे नाम्नो ये न प्लुतिं विदुः ...।''

(छ) अन्तःकरण की पवित्रता – जिस प्रकार चलनी से सत्तू चाल करके शुद्ध कर ली जाती है, उसी प्रकार विद्वान लोग साधु शब्दों के द्वारा वाणी को शुद्ध अर्थात असाधु शब्दों से अलग कर लेते हैं। ऐसे वैयाकरण विद्वानों के अन्तःकरण प्रकृति प्रत्ययों के विभागों का पहले ज्ञान रखने से अनन्तर 'साधु' शब्दों का प्रयोग करने के कारण शुद्ध अन्तःकरण वाले हो जाते हैं।
महाभाष्यकार कहते हैं –

''सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'' ।।

4.5 सारांश

उपयुक्त इकाई के माध्यम से आपने महाभाष्य के आह्निक में कहे गये शब्द के स्वरुप, शब्दार्थसम्बन्ध, व्याकरण–अध्ययन के प्रयोजन, व्याकरण की परिभाषा और लोक व्यवहार में व्याकरण से प्राप्त होने वाले लाभों को जाना ।

4.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. पतञ्जलिकृतमहाभाष्यम् – पस्पशाह्निकम – चारुदेवशास्त्री (व्याख्याकार)
2. पतञ्जलिकृतमहाभाष्यम् – पस्पशाह्निकम – विशनसिंह गौड़ (टीकाकार)
3. पतञ्जलिकृतमहाभाष्यम् – पस्पशाह्निकम् – वेदप्रकाश विद्यावाचस्पति

4.7 स्वपरख प्रश्न/अभ्यास

1. सन्दर्भ प्रसंग सहित व्याख्या कीजिये –
   क. अथ शब्दानुशासनम् ।
   ख. रक्षोहागमलघ्वसन्द्रहाः प्रयोजनम् ।
   ग. सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे ।
   घ. गर्गादिविदादिपाठात्संवृतादीनां निवृत्तिः ।
2. पस्पशाह्निक का सामान्य परिचय दीजिये ।
3. पतञ्जलि के अनुसार शब्द का स्वरुप स्पष्ट कीजिये ।
4. व्याकरणाध्ययन के मुख्य प्रयोजनों का विवेचन कीजिये ।
5. व्याकरणाध्ययन के गौण प्रयोजनों का विवेचन किजिये।
6. व्याकरण का महत्त्व प्रतिपादित कीजिये ।